अथ आम्रादिफलवर्गः

तत्रादावाम्रः (आम) । तस्य नामान्याह

आम्रश्चूतो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः । कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः पिकवल्लभः ॥ १ ॥

आम के संस्कृत नाम—आम्र, चूत, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामाङ्ग, मधुदूत, माकन्द और पिकवल्लभ ये सब हैं ॥ १ ॥

अथाम्रपुष्पगुणानाह

आम्रपुष्पमतीसारककफपित्तप्रमेहनुत् । असृग्दुष्टिहरं शीतं रुचिकृद् ग्राहि वातलम् ॥ २ ॥

आमका फूल-शीतल, रुचिकारक, ग्राही, वातजनक, एवम्-अतीसार, कफ, पित प्रमेह तथा रक्तदोष को दूर करने वाला होता है ॥ २ ॥

अथामाम्रफलम् (अमिया) । तस्य गुणानाह

आमं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुतपित्तकृत् । तरुणं तु तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत् ॥ ३ ॥

अमिया (आम के कच्चे फल) कषाय तथा अम्लरसयुक्त, रुचिकारक एवं वात और पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है । प्रौढ़ आम का कच्चा फल—तो अत्यन्त अम्ल रस युक्त तथा रूक्ष होता है एवम् त्रिदोष तथा रक्त विकार को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ३ ॥

अथ शुष्कामाम्रफलम् (अमचूर) । तस्य लक्षणगुणानाह

आम्रमामं त्वचाहीनमातपेऽतिविशोषितम् । अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफवातजित् ॥४॥

अमचूर के लक्षण—कच्चे आम के ऊपर का छिल्का उतार कर यदि उसे धूप में डाल दिया जाय तो अत्यन्त सूख जाने पर उसे अमचूर कहते हैं । अमचूर-अम्ल तथा कषाय रस युक्त, स्वादिष्ट, मल का भेदन करने वाला एवम् कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ ४ ॥

अथ पक्वाम्रफलम् (पका आम) । तस्य गुणानाह

पक्वं तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम् । गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम् ॥
कषायानुरसं वह्निश्लेष्मशुक्रविवर्द्धनम् ॥ ५ ॥

पका आम का फल-आरम्भ में मधुर तथा अन्त में कषाय रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), स्निग्ध, बल तथा सुख को देने वाला, गुरु, वात नाशक, हृदय को हितकर, वर्ण को उत्तम करने वाला, शीतल, थोड़ा पित्तजनक एवम् जठराग्नि, कफ तथा शुक्र का बढ़ाने वाला होता है ॥ ५ ॥

अथ वृक्षपक्वाम्रफलगुणानाह

तदेव वृक्षसम्पक्वं गुरु वातहरं परम् । मधुराम्लरसं किञ्चित्स्यात्पित्तप्रकोपणम् ॥ ६ ॥

वृक्ष ही में पका हुआ आम का फल—वृक्ष में यदि आम पका हो तो वह मधुर तथा अम्ल रस युक्त, गुरु, अत्यन्त वातनाशक तथा किञ्चित् पित्त को प्रकुपित करने वाला होता है ॥ ५ ॥

अथ कृत्रिमपक्वचूषिताम्रफलगुणानाह

आम्रं कृत्रिमपक्वञ्च तद्भवेत्पित्तनाशनम् । रसस्याम्लस्य हीनत्तु माधुर्याच्च विशेषतः ॥ ७ ॥
चूषितं तत्परं रुच्यं बलवीर्यकरं लघु । शीतलं शीघ्रपाकि स्याद्वातपित्तहरं सरम् ॥ ८ ॥

कृत्रिम रीति से पकाये हुए (पाल के) आम के फल—यदि आमका फल कृत्रिम रीति से पकाया गया हो तो वह पित्तनाशक होता है क्योंकि उसमें का अम्ल रस निकल जाता है तथा मधुर रस की विशेषता हो जाती है । वह यदि चूसा जाय तो अत्यन्त रुचिजनक, बल वीर्यकारक, लघु, शीतल, शीघ्र हजम होने वाला, सारक एवम् वात-पित्त नाशक है ॥ ७-८ ॥

अथ गालिताम्ररसगुणानाह

तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः । अहृद्यस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्द्धनः ॥ ९ ॥

निचोड़े आम का रस-बलकारक, गुरु, वातनाशक, सारक, हृदय के लिये अहितकर, अत्यन्त सन्तर्पण करने वाला, बृंहण रस रक्तादि वर्धक) एवं कफ की वृद्धि करने वाला होता है ॥ ९ ॥

अथाम्रखण्डगुणानाह

तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिरपाकि च । मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वातनाशनम् ॥ १० ॥

पके आम के टुकड़े—गुरु, अत्यन्त रोचक, देर में हजम होने वाले, मधुर रस युक्त, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), बलकारक, शीतल एवम् वातनाशक होते हैं ॥ १० ॥

अथ दुग्धयुक्ताम्रगुणानाह

वातपित्तहरं रुच्यं बृंहणं बलवर्द्धनम् । वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु शीतलम् ॥ ११ ॥

दुग्धाम्र (दूध के साथ खाने पर पका आम का फल—स्वादिष्ट, वातपित्त नाशक, रोचक, बृंहण, बलवर्धक, वृष्य (वीर्यवर्धक), वर्ण को को उत्तम करने वाला, गुरु तथा शीतल होता है ॥११॥

अथाम्रातियोगः (आम बहुत खाना) । तस्य दोषानाह

मन्दानलत्वं विषमज्वरं च रक्तामयं बद्धगुदोदरं च ।
आम्रातियोगो नयनामयं वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात् ॥ १२ ॥
एतदम्लाम्रविषयं मधुराम्लपरं न तु । मधुरस्य परं नेत्रहितत्वाद्या गुणा यतः ॥ १३ ॥

आम्रातियोग (अधिक आम खाने) के दोष—जठराग्नि की मन्दता, विषमज्वर, रक्तसम्बन्धी-रोग, अत्यन्त मल का अवरोध और नेत्र सम्बन्धी रोग उत्पन्न करता है । इसलिये अधिक आम नहीं खाना चाहिये । यह निषेध अम्ल (खट्टे) आम के विषय में है नकि मधुर तथा अम्ल रस युक्त आम के विषय में है, क्योंकि मधुर रस में नेत्रों को हित पहुँचाना आदि गुण वर्तमान ही हैं ॥ १२-१३ ॥

अथाम्रातियोगदोषनिवृत्त्युपायमाह

शुण्ठ्यम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणामतिभक्षणे । जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सह सौवर्चलेन च ॥१४॥

आम्रातियोग से उत्पन्न हुए दोषों की निवृत्ति का उपाय—आम अधिक खा लेने पर सोंठ के साथ जल पीना चाहिये अथवा सोंचल नोन के साथ जीरा खाना चाहिये ॥ १४ ॥

अथाम्रावर्त्तः (अमावट) । तस्य लक्षणं गुणांश्चाह

पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः । घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त्त इति स्मृतः ॥ १५ ॥
आम्रावर्त्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः । रुच्यः सूर्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्तितः ॥१६॥

अमावट के लक्षण—पके आम के रस को निकाल, कपड़े पर पसार कर धूप में सुखावे, जब सूख जाय तब उसी पर पुनः रस डाले और सुखावे इसी भांति सुखा कर जो मोटी पर्त्त तैयार होती है उसी को 'अमावट' कहते हैं।

अमावट—प्यास, वमन, वात तथा पित्त का नाशक, सारक तथा रोचक होता है। एवम् सूर्य के किरणों से सूख कर परिपक्व होने से लघु होता है ॥ १५-१६ ॥

अथाम्रबीजम् (कोइलिया)। तस्य गुणानाह

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम्। ईषदम्लञ्च मधुरं तथा हृदयदाहनुत् ॥ १७ ॥

आम्रबीज (आम की गुठली की मींगी)—कषाय, मधुर एवम् किंचित् अम्ल रस युक्त तथा वमन, अतिसार एवम् हृदय के दाह को दूर करने वाला होता है ॥ १७ ॥

अथाम्रनवपल्लवः। तस्य गुणानाह

आम्रस्य पल्लवो रुच्यः कफपित्तविनाशनः ॥ १८ ॥

आम के नवीन पल्लव—रुचिकारक तथा कफ और पित्त के नाशक होते हैं ॥ १८ ॥

१ आम

हि०, बं०—आम। **म०**—आम्बा। **गु०**—आम्बो। **ते०**—मामिडिचेट्टु। **ता०**—मांगाय, मामरं। **क०**—अंब, अंम। **फा०**—अम्बः। **अ०**—अम्बज। **अं०**—Mango Tree (मैंगो ट्री)। **ले०**—*Mangifera indica* *Linn.* (मैंजीफेरा इण्डिका)। Fam. Anacardiaceae (ॲनेकार्डिएसी)।

आम सर्वप्रिय और सर्वप्रसिद्ध फल है। इस देश में कोई ऐसा मनुष्य न होगा जो आम को न जानता हो। इसका वृक्ष बड़ा होता है और छोटी २ टहनियों के अन्त में पत्ते सघन लगते हैं। माघ फागुन में आम का बौर होता है और ग्रीष्म ऋतु में फल पकते हैं। **फल**—किंचित् लम्बाई लिये गोल होता है और उसके भीतर गुद्दी होती है जो गुठली से लिपटी हुई रहती है।

आम का वृक्ष इस देश में प्रायः सर्वत्र लगाया हुआ पाया जाता है। संभवतः वन्य अवस्था में वह सिक्कम, आसाम के नंबर जंगल, खासीया पहाड़, सतपुरा पर्वतश्रेणी के नदियों के उद्गम स्थान तथा पश्चिम घाट में पाया जाता है। इसकी दो जाति होती है—बीजू और कलमी। बीजू-बीज से उत्पन्न होता है और कलमी-डालियों में जोड़ कलम कर के उत्पन्न किया जाता है। बीजू-वृक्ष-बड़े २ होते हैं और कलमी के वृक्ष अधिक ऊँचे नहीं होते। ये दोनों ही स्वाद के भेद से अनेक प्रकार के होते हैं। किसी का स्वाद खट्टा, किसी का खट्टा-मीठा और किसी का मीठा होता है। कलमी आम प्रायः सुस्वादु होते हैं और इसी को लोग पसन्द करते हैं। इसके फल भी छोटे और बड़े के भेद से कई प्रकार के होते हैं तथा इनके रंग भी मिश्रित हरे, पीले, गुलाबी अनेक प्रकार के होते हैं। संसार के सब फलों में उत्तम और अधिक गुणकारी आम का ही फल है इसलिये इसको फलों का राजा कहते हैं। कवियों की कल्पना है कि जिस प्रकार स्वर्ग में अमृत है उसी प्रकार पृथ्वी में आम का फल है।

इसके फल, मज्जा, पत्ते एवं छाल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में विटामिन ए, बी, डी एवं अधिक मात्रा में सी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त साइट्रिक एसिड एवं अल्प मात्रा में गॅलिक् एसिड होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल उत्तम रक्तसंग्राहक है तथा इसका क्वाथ फुफ्फुस, आंत्र एवं गर्भाशय से रक्तस्राव होने पर दिया जाता है। रक्तार्श तथा अत्यार्तव में मज्जा १० से १५ रत्ती की मात्रा में देते हैं।

छिलके के साथ कच्चा फल पीस कर आमाशय एवं गले की शिथिलता तथा गले के अर्बुद में देते हैं।

कच्चे फल का शरबत (पन्ना) लू लगने पर पिलाते हैं।

गुठली के अन्दर की मज्जा अतिसार तथा प्रवाहिका में दी जाती है।

मात्रा—मज्जा १० से १५ रत्ती; छाल ३-६ माशा।

अथाम्रातकः (अम्बाडा)। तन्नामानि तत्पक्कापक्कफलगुणाँश्चाह

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्रः कपीतनः। आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत्सरम् ॥१९॥
पक्कन्तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम्। तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ॥
गुरु बल्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित् ॥ २० ॥

अम्बाडा के संस्कृत नाम - आम्रातक, पीतन, मर्कटाम्र, कपीतन और आम्रात ये सब हैं।

अम्बाडा—अम्ल रस युक्त, वातनाशक, गुरु, उष्ण, रुचिकारक और सारक होता है।

अम्बाडा का पकाफल—कषाय रस युक्त, स्वादिष्ट, विपाक में मधुर, शीतल, सन्तर्पण करने वाला, कफजनक, स्निग्ध, वृष्य, विष्टम्भक (वायु को स्तब्ध करने वाला), बृंहण, गुरु, बलकारक, एवम् वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय और रक्तविकार का नाशक है ॥ १९-२० ॥

२ अम्बाडा

हि०—अम्बाडा अमड़ा, अमरा, आमड़ा। **बं०**—आमडा। **म०**—अंबाडा, ढोर आंबा। **गु०**—अंबेडा। **क०**—अंबर। **ते०**—अंबालमु। **अं०**—Indian Hog plum. (इण्डियन हॉग प्लम्)। **ले०**—*Spondias mangifera Willd.* (स्पॉण्डियस् मॅञ्जीफेरा)। Fam. Anacardiaceae (ॲनेकार्डिएसी)।

अम्बाडा का वृक्ष बड़ा होता है। पत्ते-संयुक्त तथा १-१½ फीट लंबे होते हैं। पत्रक-३ से ६ इंच लम्बे, १½-३ इञ्च चौड़े, तथा चमकीले, दीर्घवृत्ताभ आयताकार, लम्बाग्र तथा किनारे के चारों ओर रहने वाली शिरा में अन्य शिराएँ मिलती हैं। **पुष्प**-हरिताभ, श्वेत वर्ण तथा छोटे होते हैं। वसन्त ऋतु में इसके सब पत्ते गिर जाते हैं और मञ्जरी लगती है। **फल**-गुच्छों में, हरिताभ एवं अण्डाकार लगते हैं। इनका अचार बनाते हैं। यह देशी और विलायती भेद से दो प्रकार का होता है। विलायती को स्पौ० डलसिस् (S. dulcis) कहते हैं। देशी के फल कच्ची अवस्था में अम्ल किन्तु पकने पर बाहरी भाग में अम्ल तथा अंदर से मधुर होते हैं। विलायती के फल गहरे अंबर वर्ण के, अत्यन्त अम्ल एवं इसमें खराब आम के जैसी गंध आती है।

सुखाये हुये अपक्व फलों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह ग्राही तथा रक्तपित्त शामक होते हैं। छाल अतिसार में देते हैं। कर्णशूल में पत्तों का रस डालते हैं। फल का रस पित्तप्रकोप में देते हैं।

अथ राजाम्रः (कलमी आम)। तन्नामानि तत्फलस्य गुणाँश्चाह

राजाम्रष्टङ्क आम्रातः कामाङ्गो राजपुत्रकः ॥ २१ ॥
राजाम्रं तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु। ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्मवातकृत्कफपित्तनुत् ॥ २२ ॥

कलमी आम के संस्कृत नाम—राजाम्र, टङ्क, आम्रात, कामाङ्ग तथा राजपुत्रक ये सब हैं। **कलमी आम**—कषाय तथा मधुर रस युक्त, विशद गुण युक्त, शीतल, गुरु, ग्राही, रूक्ष एवम्—विबन्ध, आध्मान, तथा वातकारक होता है और कफ तथा पित्त का नाशक होता है ॥ २१-२२ ॥

३ कलमी आम

सब प्रकार के कलमी आमों में लंगड़ा आम प्रसिद्ध है। हाजीपुर और बनारस का लंगड़ा आम सबसे अच्छा होता है, बम्बई का लंगड़ा मध्यम प्रकार का समझा जाता है। पूरब का गोला, लखनऊ का सुफेदा, रामपुर का फजरी, मुरादाबाद का कलमी आदि आम अच्छे होते हैं। जिस आम में रेशा बहुत कम रहता है, गूदा अधिक रहता है तथा जो स्वाद में खूब मीठा सर्वप्रिय होता है उसी को उत्तम समझना चाहिये। यह जितना मीठा होता है उतने ही उसमें गुण भी अधिक होते हैं। आम में जो पुष्टिकारक, बलकारी, वीर्य को उत्पन्न करना इत्यादि गुण हैं वे सब भली प्रकार से पके हुए और मीठे ही आम में होते हैं। अन्य वर्णन आम के साथ लिखा गया है।

अथ कोशाम्रः। तस्य नामानि तत्फलस्य च गुणाँश्चाह

कोशाम्र उक्तः क्षुद्राम्रः कृमिवृक्षः सुकोशकः। कोशाम्रः कुष्ठशोथास्रपित्तव्रणकफापहः ॥२३॥
तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोष्णं गुरु पित्तलम्। पक्वन्तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत् ॥२४॥

कोशाम्र आम के संस्कृत नाम—कोशाम्र, क्षुद्राम्र, कृमिवृक्ष तथा सुकोशक ये सब हैं।

कोशाम्र—कुष्ठ, शोथ, रक्तविकार, पित्त या रक्तपित्त, व्रण और कफ का नाशक है। कोशाम्र आम का फल-ग्राही, वातनाशक, अम्लरसयुक्त, उष्ण, गुरु तथा पित्तजनक होता है। यदि इसके फल पके हों तो अग्निदीपक, रुचिकारक, लघु, उष्ण एवं कफ तथा वात के नाशक होते हैं ॥

४ कोशाम्र

हि०—कोशम्भ, कुसुम, कोसम। **क०**—चकोत। **म०**—कोसिंब। **ता०**—पुमरम्। **मल**—पुपम्। **गु०**—कोसुंब। **अं०**—Ceylon Oak (सिलोन् ओक्)। **ले०**—*Schleichera trijuga* Willd. (श्लीकेरा ट्राइज्यूगा)। Fam. Sapindaceae (सेपिण्डेसी)।

यह सतलज से नेपाल तक, दक्षिण तथा सिवालिक पहाड़ के ऊपर मध्य भारत में पाया जाता है।

इसका वृक्ष बड़ा छायादार तथा सुन्दर होता है। **पत्ते**—पक्षवत् तथा ८-१६ इञ्च लंबे होते हैं। **पत्रक**—२ से ४ जोड़े, अखण्ड, ३-१० इञ्च लंबे, आयताकार, अवृन्त तथा चिकने होते हैं। नीचे वाले पत्रक ऊपर के पत्रकों की अपेक्षा छोटे होते हैं। **फूल**—मञ्जरी में आते हैं और वे पीलापन युक्त हरे रंग के होते हैं। **फल**—१½ इञ्च लम्बे गोल, दानेदार और किञ्चित् नोकीले होते हैं। **बीज**—१ से ३, चिकने तथा लंबगोल चिपटे होते हैं। इस पर लगी हुई लाख बहुत उत्तम मानी जाती है। बीज की गुद्दी तथा बाह्यवृद्धि (Aril) खाई जाती है। इसकी **छाल**—मोटी, मुलायम, बाहर से धूसर, खुरदरी तथा भीतर से फीके लाल रंग की होती है। तोड़ने से मग्न छोटा होता है। स्वाद कुछ कषाय तथा गंध हलकी। इसकी छाल तथा बीज तैल का उपयोग किया जाता है। कलकत्ते की तरफ बीजों को पक कहते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में साइनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल कषाय होती है तथा पानी में घिस कर खुजली आदि चर्मरोगों पर लगाई जाती है। बीजों का तेल, जिसे **मकासर तेल** कहते हैं, खुजली पर

लगाया जाता है। इसको बालों में लगाने से बाल स्वच्छ होते हैं तथा बढ़ते हैं। बीजों का चूर्ण जानवरों के व्रणों पर डालते हैं जिससे कीड़े निकल जाते हैं।

अथ पनसः (कटहल)। तन्नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

पनसः कण्टकिफलः पलसोऽतिबृहत्फलः। पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ॥२५॥
तर्पणं बृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलंभृशम्। बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतव्रणान् ॥२६॥
आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु। दाहकृन्मधुरं बल्यं कफमेदोविवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

कटहर के संस्कृत नाम—पनस, कन्टकिफल, पलस तथा अतिबृहत्फल ये सब हैं।

कटहर के पके फल—शीतल, स्निग्ध, पित्त तथा वात के नाशक, सन्तर्पणकारक, बृंहण, स्वादिष्ट, मांस तथा कफ की अत्यन्त वृद्धि करने वाले, बलदायक, शुक्रजनक, एवम् रक्तपित्त, क्षत तथा व्रण को दूर करनेवाले होते हैं। वे ही यदि कच्चे हों तो विष्टम्भकारक, वातजनक, कषाय तथा मधुररसयुक्त, गुरु, दाहकारक, बलदायक, कफ तथा मेद की वृद्धि करने वाले होते हैं ॥ २५-२७ ॥

अथ पनसबीजगुणानाह

पनसोद्भूतबीजानि वृष्याणि मधुराणि च। गुरूणि बद्धविट्कानि सृष्टमूत्राणि संवदेत् ॥२८॥

कटहर के बीज—वृष्य (वीर्यवर्धक), मधुर रस युक्त, गुरु, मल को बांधने वाले एवम् मूत्र की प्रवृत्ति करानेवाले होते हैं ॥ २८ ॥

अथ पनसमज्जगुणानाह

मज्जा पनसजो वृष्यो वातपित्तकफापहः। विशेषात्पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मन्दवह्निभिः ॥२९॥

कठहल के बीज की मींगी—वृष्य (वीर्यवर्धक) एवम् वात, पित्त तथा कफ की नाशक होती है। विशेषरूप से कटहल खाना गुल्म तथा मन्दाग्निरोगवाले रोगियोंको छोड़ देना चाहिये।

५ कटहर

हि०—कटहर, कटहल, कठैल। **बं०**—काँटाल। **म०**—फणस। **गु०**—फनस। **क०**—हलसु। **ते०**—पनसकायि। **ता०**—पेलाकायि। **अं०**—Jack Tree (जैक ट्री)। **ले०**—*Artocarpus integrifolia Linn f.* (आर्टोकार्पस् इन्टेग्रिफोलिया)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

कटहर—विशेष कर गरम प्रान्तों में रोपण किया जाता है। पश्चिम घाट के जङ्गलों में यह आपही आप उत्पन्न होता है और दक्षिण, बिहार तथा बंगाल में अधिक होता है।

इस का वृक्ष बड़ा होता है। **छाल**—खुरदरी रहती है जिससे दुधिया क्षीर निकलता है। **पत्ते**—४-८ इञ्च लम्बे, कुछ चौड़े, मोटे, किंचित् अण्डाकार और किंचित् कालापन युक्त हरे रङ्ग के होते हैं। स्तम्भ और मोटी शाखाओं पर फूल फल लगते हैं। **फूल**—२ से ६ इञ्च तक लम्बे, १-२ इञ्च गोल अण्डाकार और किंचित् पीले रङ्ग के होते हैं। **फल**—बहुत बड़े-बड़े, १-२ फीट एवं लम्बाई युक्त गोल होते हैं। उसके ऊपर कोमल काँटे होते हैं। **गूदा**—बीज के चारों तरफ लिपटा हुआ मोटा होता है जो कच्ची अवस्था में सफेद तथा पकने पर पीला हो जाता है। कच्चे फलकी तरकारी बनाते हैं तथा पके फल को खाते हैं। बीजों में स्टार्च रहता है जिन्हें पकाकर खाते हैं।

रासायनिक संगठन—फलों में विटामिन 'ए' तथा 'सी' तथा लौह, खटिक एवं फास्फोरस तथा प्रोटीन आदि द्रव्य होते हैं। बीजोंमें विटामिन बी$_1$ तथा बी$_2$ पाये जाते हैं। काष्ठ में पीत रंजक द्रव्य होता है। छाल में टैनिन होता है। सूखे क्षीर में रवेदार पदार्थ आर्टोस्टेनोन (Arto-

stenone $C_{30}H_{56}O$) पाया जाता है जिसका परिवर्तन आर्टोस्टेरोन (Artosterone) में किया गया है जिसमें पुंस्त्वजनक (Androgenic—ॲण्ड्रोजेनिक) गुण पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका पका फल गुरु, शीत, मृदु सारक, वृष्य, बृंहण, तर्पण तथा बल्य है किन्तु कच्चा विबन्धकारक होता है। पत्तों का चर्म विकारों में प्रयोग करते हैं। क्षीर का लेप फोड़े आदि पकाने के लिये करते हैं।

अथ लकुचः (बडहर)। तन्नामानि तत्पक्वफलगुणाँश्चाह

लकुचः क्षुद्रपनसो लिकुचो डहुरित्यपि। आमं लकुचमुष्णञ्च गुरु विष्टम्भकृत्तथा ॥ ३० ॥
मधुरञ्च तथाऽम्लञ्च दोषत्रितयरक्तकृत्। शुक्राग्निनाशनं वाऽपि नेत्रयोरहितं स्मृतम् ॥३१॥
सुपक्वं तच्च मधुरमम्लं चानिलपित्तहृत्। कफवह्निकरं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकञ्च तत् ॥ ३२ ॥

बड़हर के संस्कृत नाम—लकुच, क्षुद्रपनस, लिकुच तथा डहु ये सब हैं।

बड़हर के कच्चे फल—उष्ण, गुरु, विष्टम्भकारक, मधुर तथा अम्लरस युक्त, त्रिदोष एवं रक्त विकार को उत्पन्न करने वाले, शुक्र और जठराग्नि को नष्ट करने वाले तथा नेत्रों के लिये अहितकर होते हैं। पके फल—मधुर तथा अम्ल रसयुक्त, वात तथा पित्त के नाशक, कफ और जठराग्नि के वर्धक, रोचक, वृष्य (वीर्यवर्धक) तथा विष्टम्भक होते हैं ॥ ३०–३२ ॥

६ बड़हल

हि०—बड़हल (र), बरहर, बरहल। बं०—डेओ, मादार, डेलो, डहुया। म०—वोटोंबा। गु०—लकुच। ता०—इलगुसम्। ते०—कम्मरेगु। अं०—Monkey Jack (मंकीजॅक्)। ले०—*Artocarpus lakoocha Roxb.* (आर्टोकार्पस् लकूच)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

यह गरम प्रान्त में कुँमायू से पूरब की ओर और दक्षिण में ट्रावनकोर तक तथा अनेक प्रान्तों में उत्पन्न होता है।

बड़हर का वृक्ष—२० से ३० फीट ऊंचा होता है। इसके पत्ते—५ से १२ इञ्च लम्बे, २ से ६ इञ्च चौड़े, अंडाकृति तथा रुक्ष होते हैं। पुष्प—एकलिङ्गी होते हैं। फल—गोल गांठदार, २ से ४ इञ्च व्यास के होते हैं। कच्चे में हरे तथा स्वाद में खट्टे और पकने पर मटमैले पीले रङ्ग के और स्वाद में खट्टेमीठे होते हैं। इनके भीतर कटहर के समान रेशा और बीज होते हैं पर कटहर से छोटे होते हैं। इसलिये इसको क्षुद्रपनस भी कहते हैं। वसन्त ऋतु में यह फूलता तथा वर्षा में फलता है।

रासायनिक संगठन—छाल में ८·५% टैनिन होता है। इसके फल में रंजक द्रव्य इसकी अन्य जाति (Species) की अपेक्षा अधिक होता है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज विरेचक होते हैं। विरेचन के लिये एक दो बीज या थोड़ासा क्षीर देते हैं। छाल का चूर्ण व्रण पर डालते हैं जिससे मवाद सूख जाता है तथा फोटे से फुन्सियां तथा व्रण आदि धोते हैं।

इसके फल को अहिततम (निकृष्टतम) बतलाया गया है। (अ. हृ. सू. अ. ६)।

अथ कदली (केला)। तन्नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणांश्चाह

कदली वारणा मोचाऽम्बुसाराऽंशुमतीफला। मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफकृद्[१] गुरु ॥
स्निग्धं पित्तास्रतृड्दाहक्षतक्षयसमीरजित्। पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यञ्च बृंहणम् ॥

१. कफनुद् इति पाठा०।

क्षुत्तृष्णानेत्रगदहृन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत् ॥ ३४ ॥

केला के संस्कृत नाम—कदली, वारणा, मोचा, अम्बुसारा तथा अंशुमतीफला ये सब हैं।

केला के कच्चे फल—स्वादिष्ट, शीतल, विष्टम्भक, कफकारक, गुरु, स्निग्ध एवम् पित्त, रक्तविकार, प्यास, दाह, क्षत, क्षय, तथा वात को दूर करने वाले होते हैं।

पके फल—स्वादिष्ट, शीतल, विपाक में मधुर रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), बृंहण (रस-रक्तादि-वर्धक), रुचि तथा मांस को बढ़ाने वाले एवम्-भूख, प्यास, नेत्ररोग तथा प्रमेह के नाशक हैं॥

अथ कदलीभेदान् गुणनिर्देशपूर्वकमाह

माणिक्यमर्त्यामृतचम्पकाद्या भेदाः कदल्या बहवोऽपि सन्ति।
उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति निर्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम् ॥ ३५ ॥

केले के भेदों के नाम—माणिक्यकदली, मर्त्यकदली, अमृतकदली तथा चम्पककदली इत्यादि केले के बहुत से भेद हैं।

उक्त भेदों के गुण—जो गुण सामान्यरूप से पूर्व में केले के कह आये हैं वे सब इनमें विशेष रूप से रहते हैं तथा ये निर्दोष एवं लघु भी अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। केले के फूल एवं कन्द के गुण आगे शाकवर्ग में दिये हुवे हैं।

७ केला

हि०—केला, कदली, केरा। बं०—केला, कला। म०—केळ। गु०—केला। क०—बाळि। ते०—अरटि। ता०—वाळै। फा०—मोज, मोक्ष। अ०—तल्ह। अं०—Plantain (प्लॅन्टेन)। ले०—*Musa sapientum Linn.* (म्यूसा सेपिएन्टम्)। Fam. Musaceae (म्यूसेसी)।

केले का वृक्ष प्रायः सब प्रान्तों में होता है। फलने पर इसका पेड़ नष्ट हो जाता है। अन्तर्भूमिशायी कन्द से अंकुर निकल वृक्ष तैयार हो जाता है। इसके बड़े बड़े लम्बे पत्ते मुलायम होते हैं। हवा के झोंकों से जगह २ फट जाते हैं। इसके पत्तों पर भोजन करते हैं।

भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाले फलों में आम के बाद केला ही है। सब प्रकार के केलों में बम्बई का लाल केला, कलकत्ते का चाटिम केला, चम्पक केला (पीला केला) प्रशंसा के योग्य हैं। पर्वती केला, काला केला, राजभोग, मानभोग, चीनिया आदि केले भी बढ़िया गिने जाते हैं। अच्छी किस्म के फलों में बीज नहीं होते।

इसकी दो जातियां (Species) होती हैं। उपर्युक्त म्यू०सेपिएन्टम् में फल छोटे होते हैं तथा कच्चे खाये जा सकते हैं तथा दूसरी म्यू०पॅराडिसिका (Musa paradisica) जाति में फल बड़े होते हैं किन्तु केवल पकने पर ही खाये जा सकते हैं। इसके जंगली वृक्ष बिहार तथा पूर्वी हिमालय में ४००० फीट तक पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—केले के पञ्चाङ्ग की राख में पोटॅशियम होता है। कच्ची अवस्था में इसमें टैनिन होते हैं। पक्व फल में शर्करा, विटामिन 'सी', कुछ 'बी', खनिज द्रव्य एवं अन्य द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग इसके पके फल बल्य, रक्तपित्त शामक, संग्राहक, तथा जीवनीय हैं। इससे रक्त की मात्रा बढ़ती है, आन्त्र की क्रिया सुधरती है तथा रक्त की अम्लता कम होती है। इसको अतिसारादि में पथ्य के रूप में देते हैं। कच्चे केले का प्रयोग अन्य द्रव्यों के साथ मधुमेह में किया जाता है। इसके फूलों का रस दही के साथ अत्यार्तव में देते हैं। फूलों की सब्जी रक्तपित्त में

तथा मधुमेह में देते हैं। काण्ड का रस अपस्मार, अपतन्त्रक आदि वातिक विकारों में देते हैं तथा यह तृषा शामक होता है। इसका शरबत खांसी में दिया जाता है।

अथ चिर्भिटम् (कचरिया, फूट)। तन्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणांश्चाह

चिर्भिटं धेनुदुग्धं च तथा गोरक्षकर्कटी ॥ ३६ ॥
चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्तकफापहम्। अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्वं तूष्णञ्च पित्तलम् ॥३७॥

कचरिया के संस्कृत नाम—चिर्भिट, धेनुदुग्ध तथा गोरक्षकर्कटी ये सब हैं।

कचरिया—मधुर रसयुक्त, रूक्ष, गुरु, पित्त-कफहर, किंचित् उष्ण, ग्राही, विष्टम्भी (दस्त साफ न लाने वाली) होती है एवम् पका फल-उष्ण तथा पित्तजनक होता है ॥ ३६-३७ ॥

८ फूट

हि०—फूट, फूंट। **बं०**—फुटि। **म०**—फूट। **ले०**—*Cucumis momordica Roxb.* (क्युक्युमिस् मोमोर्डिका)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

फूट—प्रायः सब प्रान्तों की रेतीली भूमि में उत्पन्न होता है और खेतों में इसको रोपण करते हैं।

इसकी लता-होती है। पत्ते-गोलाकार, गहरे कटे किनारे वाले या प्रायः पांच भाग वाले तथा बारीक दन्तुर होते हैं। फूल-छोटे-छोटे होते हैं। फल-१ से २ फीट लंबे, बेलनाकार, ३ से ६ इंच व्यास के, चिकने, कच्ची अवस्था में गहरे हरे रंग के तथा पकने पर नीबू जैसे पीतवर्ण के होते हैं।

इसके दो भेद होते हैं। एक वर्षा में होता है तथा दूसरा ग्रीष्म में। इसको कच्चा या पकाकर लोग खाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके बीज दाहप्रशमन माने जाते हैं।

अथ नारिकेलः (नारियल)। तन्नामानि तत्फलसाधारणगुणांश्चाह

नारिकेलो दृढफलो लाङ्गली कूर्चशीर्षकः। तुङ्गः स्कन्धफलश्चैव तृणराजः सदाफलः ॥ ३८ ॥
नारिकेलफलं शीतं दुर्जरं बस्तिशोधनम्। विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्रदाहनुत् ॥ ३९ ॥

नारियल के संस्कृत नाम—नारिकेल, दृढफल, लाङ्गली, कूर्चशीर्षक, तुङ्ग, स्कन्धफल, तृणराज तथा सदाफल ये सब हैं।

नारियल का फल—शीतल, दुर्जर (देर में हजम होने वाला), वस्तिशोधक, विष्टम्भक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), बलकारक एवम्-वात, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ३८-३९ ॥

अथ कोमलजीर्णतत्फलयोर्गुणानाह

विशेषतः कोमलनारिकेलं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदोषान्।
तदेव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भिः ॥ ४० ॥

नारियल का कोमल फल—विशेषतः पित्तज्वर तथा पित्तदोष को दूर करने वाला होता है। पुराना फल-गुरु, पित्तकारक, विदाही तथा विष्टम्भक होता है ऐसा वैद्यों का मत है ॥ ४० ॥

अथ नारिकेलजलगुणानाह

तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु। पिपासापित्तजित्स्वादु बस्तिशुद्धिकरं परम् ॥४१॥

नारियल का जल—स्वादिष्ट, शीतल, हृदय को हितकर, अग्निदीपक, शुक्रजनक, लघु, अत्यन्त वस्तिशोधक एवम् प्यास तथा पित्त को शान्त करने वाला होता है ॥ ४१ ॥

अथ नारिकेलादीनां शिरोगुणानाह

नारिकेलस्य तालस्य खर्जूरस्य शिरांसि तु। कषायस्निग्धमधुरबृंहणानि गुरूणि च ॥ ४२ ॥

नारियल, ताड़ तथा खजूर के शिर (मस्तक पर होने वाला मीठा गूदा)—कषाय तथा मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, गुरु एवम् बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) होते हैं ॥ ४२ ॥

९ नारियल

हि०—नारियल, नरियल, गरी, गिरी। **बं०**—नारिकेल, डाब। **म०**—(फल) नारळी, नारळ, (वृक्ष) माड़। **गु०**—नारि(अ)यल। **ते०**—टकाई। **ता०**—तेंगाई, टेन्ना। **फा०**—जोज हिन्दी नारीयल, नारगील। **अ०**—नारजिल। **अं०**—Coconut (कोकोनट्)। **ले०**—*Cocos nucifera Linn.* (कोकस् न्यूसीफेरा)। Fam. Palmea (पामी)।

नारियल—यह भारत के उष्ण एवं आर्द्र प्रदेशों, विशेषकर समुद्र, नदी आदि के किनारे लगाया हुआ पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**-सीधा या कुछ टेढ़ा, ८० फीट या अधिक ऊँचा, आधार की तरफ कुछ मोटा जहाँ से मूल निकलते हैं एवं कचित् शाखायुक्त होता है। **पत्ते**-६ से १८ फीट लंबे, पक्षवत् संयुक्त; पत्रक २ से ३ फीट लंबे, क्रमशः नोकदार एवं कम चौड़े होते हैं। **पुष्प**-प्रत्येक पत्र के कोण से ४ से ६ फीट लंबा, नारंग या तृण वर्ण का कोशावृत पुष्प व्यूह निकलता है जिसमें स्त्रीपुष्प नीचे की तरफ, संख्या में कम, १ इंच लंबे तथा गोल होते हैं और पुंपुष्प, अधिक, छोटे मधुर गन्ध वाले एवं अग्रभाग पर होते हैं। **फल**-अंडाकार, त्रिकोण युक्त, ६ से ११ इंच लंबा तथा एक बीज युक्त होता है। फलभित्ति का बाह्यस्तर मोटा तथा रेशेदार होता है जो कठोर अन्तस्तर को घेरे रहता है। अन्तस्तर के अन्दर बीज रहता है। अन्तस्तर के एक सिरे पर ३ छिद्र रहते हैं जिनमें से किसी एक से बीजोद्भेद के समय अंकुर निकलता है। गरी के अन्दर अपक्व अवस्था में बहुत पानी रहता है किन्तु पकावस्था में यह कम हो जाता है।

नारियल के अनेक प्रकार (Varieties) होते हैं जिनमें से कुछ के पेड़ छोटे तथा कुछ के ऊंचे रहते हैं। फलों का रंग, आकार तथा संख्या के अनुसार भी अनेक प्रकार पाये जाते हैं।

इसके सभी अंगों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—ताजी १०० ग्राम गरी में आर्द्रता ३६·३, प्रोटीन ४·५, तेल ४१·६, कर्बोज १३, रेशा ३·६, चूना ·०१ तथा फास्फोरस ·२४ ग्राम और लोह १·७ मि० ग्रा०, विटामिन 'सी' १ मि० ग्रा०, बी'$_1$ १५ एकक, अत्यल्प 'ए', तथा 'ई' ·२ मि० ग्रा० एवं कुछ ताम्र भी रहता है।

सूखे गरी में तेल ५७-७५% रहता है जो अन्य तेलों की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होता है। इसे आसानी से चर्म सोख लेता है तथा इसमें जल भी पर्याप्त मिल पाता है इसलिए मलहम आदि बनाने में इसका उपयोग करते हैं।

डाब (हरा नारियल) के जल में सोडियम् १०५, पोटॅशियम ३१२, कॅल्शियम २९, मॅग्नेशियम् ३०, लोह ·१०, ताम्र ·०४, फॉस्फोरस ३७, गंधक २४, क्लोरीन १८३, विटामिन 'सी' २·२–३·७, मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम में एवं विटामिन 'बी' अल्प रहता है। एक डाब में करीब १ औंस तक शर्करा रहती है।

इसकी ताजी मीठी ताड़ी में शर्करा बहुत रहती है तथा १०० सी० सी० में विटामिन 'सी' १६–३० मि० ग्रा० रहता है।

गुण और प्रयोग– नारियल मधुर, वृष्य, बृंहण, बल्य शीत एवं बस्तिशोधक है। (१) डाब का पानी शीत, मूत्रजनन, तृष्णा निग्रहण एवं ज्वरघ्न है। इसे ज्वर, सोजाक तथा हैजे में देते हैं। (२) इसका तेल केश्य एवं व्रणरोपक होता है। क्षय में इसका उपयोग काडलिवर आईल की तरह करते हैं। (३) इसकी ताड़ी या उससे बना मद्य दाहशामक, मूत्रल, बल्य, सौमनस्यजनन, निद्राजनन, वाजीकरण एवं बृंहण होता है। (४) इसके पुष्प ग्राही होते हैं। (५) चिपटे कृमि के लिये एक नारियल की गरी खिलाते हैं किन्तु साथ में विरेचन देना आवश्यक है। (६) इसका मूल मूत्रल एवं कषाय है तथा अश्मरी, प्रमेह एवं अत्यार्तव में इसका क्वाथ देते हैं। (७) इसके कवच को जलाकर निकाला तेल चर्मरोगों में बाहर से प्रयुक्त होता है। (८) नारियल का दूध क्षय, दुर्बलता आदि में तथा शस्त्रक्रिया के पूर्व एवं पश्चात् पिलाते हैं जिससे 'शाक' एवं रक्तस्राव का भय नहीं रहता।

अथ कालिन्दम् (तरबूज)। तन्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणांश्चाह

कालिन्दं कृष्णबीजं स्यात्कालिङ्गञ्च सुवर्तुलम्। कालिन्दं ग्राहि दक्पित्त शुक्र हृच्छीतलं गुरु॥
पक्वन्तु सोष्णं सक्षारं पित्तलं कफवातजित्॥ ४३॥

तरबूज के संस्कृत नाम—कालिन्द, कृष्णबीज, कालिङ्ग तथा सुवर्तुल ये सब हैं।

तरबूज के कच्चे फल– ग्राही, शीतल, गुरु एवम्-दृष्टि की शक्ति, पित्त तथा शुक्र नष्ट करने वाले होते हैं। पके फल–उष्ण, क्षारयुक्त, पित्तजनक एवम्-कफ तथा वात को दूर करने वाले होते हैं॥ ४३॥

१० तरबूज

हि०–तरबूज, तरबूजा। **बं०**–तरमुज। **म०**–कलिंगड। **गु०**–तड़बूज। **ता०**–कोमाट्टि। **ते०**–पुच्चकाया, तरबूजं। **फा०**–हिन्दवाना, हिन्ददानह। **अ०**–बतिख हिन्दी, जकी। **अं०**–Watermelon (वाटर मेलन्)। **ले०**–*Citrullus vulgaris Schrad* (सिट्रुलस् वल्गॅरिस्)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। नदियों के किनारे, दियारे पर एवं रेतीली भूमि में अच्छा फल लगता है।

इसकी खुरदरी लता-खेतों में पसरी हुई रहती है। पत्ते-इन्द्रायन के पत्तों के समान गहरे कटे किनारे वाले होते हैं। फूल–एक इंच के घेरे में गोलाकार होते हैं। फल–बड़े बड़े पेठे और कोंहड़े के आकार वाले होते हैं। गूदी–लाल या सफेद होती है। बीज–चिपटे, लाल, भूरे या काले होते हैं॥ ११॥

रासायनिक संगठन—बीजों में २० से ४०% पीले रंग का तेल होता है। फल में काफी मात्रा में पेक्टिन तथा रस में सिट्रुलिन ०·१७% होता है।

गुण और प्रयोग—बीज शीतल, मूत्रजनन तथा बल्य होते हैं। बीजों का तेल बादाम के तेल के स्थान में उपयोग में आता है। फल मूत्रल तथा शीतल होता है।

अथ खर्बूजम् (खर्बूजा)। तन्नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

दशाङ्गुलं तु खर्बूजं कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ ४४॥
खर्बूजं मूत्रलं बल्यं कोष्ठशुद्धिकरं गुरु। स्निग्धं स्वादुतरं शीतं वृष्यं पित्तानिलापहम्॥४५॥
तेषु यच्चाम्लमधुरं सक्षारञ्च रसाद्भवेत्। रक्तपित्तकरं तत्तु मूत्रकृच्छ्रकरं परम्॥ ४६॥

खर्बूजा के संस्कृत नाम—दशाङ्गुल और खर्बूजा ये हैं। खर्बूजा के फल–अत्यन्त स्वादिष्ट, मूत्रजनक, बलकारक, कोष्ठशुद्धि करनेवाले, गुरु, स्निग्ध, शीतल, वृष्य (वीर्यवर्धक) एवम्-पित्त तथा वायु को दूर करने वाले होते हैं। इनमें जो अम्ल, मधुर एवम् क्षार रसयुक्त होते हैं वे रक्तपित्त तथा मूत्रकृच्छ्र को अत्यन्त करने वाले होते हैं॥ ४४॥

११ खरबूजा

हि०–खरबूज, खरबूजा, खर्बूजा, चिभुड। **बं०**–खरमुज। **म०**–खरबूज। **गु०**–तलिया शकर टेटी, तलियाभीमड़ा। **ते०**–खरबूज। **क०**–षड़मुजा। **फा०**–खरपुजह, खरपुजा। **अ०**–बितिख, खर्पुजह, खरपुजाह। **अं०**–Melon (मेलन्)। **ले०**–*Cucumis melo Linn.* (क्युक्युमिस् मेलो)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में यह रोपण किया जाता है। उत्तर पश्चिमी उष्ण तथा शुष्क प्रदेशों में अधिक रोपण किया जाता है। नदियों के किनारे रेतीली भूमि में यह अधिक उत्पन्न होता है।

इसकी लता–भूमि पर पसरी हुई रहती है। पत्ते–रोमश, गोलाकार एवं उनमें कहीं कहीं नोक-सा निकला रहता है। फूल–पीले रङ्ग के आते हैं। फल–गोलाकार कुछ चिपटे रहते हैं। पकने पर वे किञ्चित् हरापन युक्त पीले रंग के या सफेदी मायल हो जाते हैं। उनके चारों ओर रेखायें रहती हैं जो नीले रंग की होती हैं। गूदी के भीतर बीजों के समूह का लसीला गोला रहता है। बीज–लम्बाई युक्त चिपटे होते हैं। बीजों का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में तेल होता है। फल में खटिक, ताम्र, फॉस्फोरस, लोह तथा विटामिन 'ए', 'बी$_1$', 'बी$_2$' तथा 'सी' आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—बीज शीतल, मूत्रजनन एवं बल्य हैं; फल शीतल हैं तथा पुराने एक्जीमा के लिए लाभदायक माने जाते हैं। मूत्रकृच्छ्र में बीज देते हैं।

अथ त्रपुसम् (खीरा, बालमखीरा)। तस्य नामानि पक्वापक्वतत्फलतद्बीजगुणाँश्चाह

त्रपुसं कण्टकिफलं सुधावासः सुशीतलम्। त्रपुसं लघु नीलञ्च नवं तृट्क्लमदाहजित्॥४७॥
स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम्। तत्पक्वमम्लमुष्णं स्यात्पित्तलं कफवातनुत्॥४८॥
तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित्॥ ४८॥

खीरा के संस्कृत नाम—त्रपुस, कण्टकिफल, सुधावास तथा सुशीतल ये सब हैं। खीरे के छोटे, नीले तथा नवीन फल–स्वादिष्ट, शीतल एवम्—प्यास, क्लान्ति, दाह तथा पित्त को दूर

करनेवाले होते हैं और रक्तपित्त को तो अत्यन्त नष्ट करनेवाले होते हैं। खीरे के पके फल-अम्लरसयुक्त, उष्ण, पित्तजनक एवम्-कफ तथा वात को नष्ट करनेवाले होते हैं। खीरे के बीज-मूत्रजनक, शीतल, रूक्ष एवम्-पित्त, रक्तविकार तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाले होते हैं ॥४७-४८॥

१२ खीरा

हि०-खीरा, बालमखीरा। **बं०**-क्षीरा, शशा। **म०**-तौसे। **क०**-तसेयकायि। **गु०**-तांसळी। **ते०**-दोसकाई। **ता०**-मुल्लुवेल्लेरी। **फा०**-शियार खुर्द, खयार, बादरङ्ग। **अ०**-कंशद। **अं०**-Cucumber (क्युकुम्बर)। **ले०**-Cucumis sativus Linn. (क्युक्युमिस सटाइवस्)। *Fam. Cucurbitaceae* (कुकुर्बिटेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है।

इसकी बेल-खेतों में फैली हुई रहती है। पत्ते-५-६ इञ्च के घेरे में गोलाकार और पाँच कोण वाले होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के आते हैं। फल-६ से १२ इञ्च तक लम्बे होते हैं और उनमें ककड़ी के समान बीज होते हैं। एक बड़ी जाति का खीरा होता है जिसको-बालम खीरा-कहते हैं। इसकी लम्बाई अधिक होती है। इसका एक प्रकार 'मुंडोसा' मद्रास की तरफ अधिक प्रचलित है जिसके फलों पर छोटे काँटे होते हैं।

रासायनिक संगठनः—इसके फलों में खटिक, फास्फोरस, लौह, विटामिन सी तथा विटामिन बी$_1$ पाया जाता है। बीजों में तेल होता है। बीजों की राख में फॉस्फेट अधिक (P_2O_5, ०·६२%) रहते हैं।

गुण और प्रयोग—यह शोथहर है। शोथ पर, इसको काटकर उसमें नमक डालकर बाधने से सूजन कम होती है तथा पूय एक स्थान पर इकट्ठा हो जाता है। बीज का उपयोग बस्तिशूल में करते हैं।

अथ गुवाकः (सुपारी)। तन्नामानि तत्फलनामगुणाँश्चाह

घोरण्टः पूगी पूगश्च गुवाकः क्रमुकोऽस्य तु। फलं पूगीफलं प्रोक्तमुद्वेगं च तदीरितम् ॥ ४९ ॥
पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तजित्। मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥ ५० ॥

सुपारी के संस्कृत नाम—घोरण्ट, पूगी, पूग, गुवाक तथा क्रमुक ये सब हैं।

इसके फल के संस्कृत नाम—पूगीफल तथा उद्वेग हैं।

सुपारी-कषाय रसयुक्त, गुरु, शीतल, रूक्ष, मोहजनक, अग्निदीपक, रोचक एवम्-कफ, पित्त तथा मुख की विरसता को दूर करने वाली होती है ॥ ४९-५० ॥

अथार्द्रस्विन्नतत्फलगुणानाह

आर्द्रं तद् गुर्वभिष्यन्दि वह्निदृष्टिहरं स्मृतम्।
स्विन्नं दोषत्रयच्छेदि दृढमध्यं तदुत्तमम् ॥ ५१ ॥

कच्ची सुपारी-गुरु, अभिष्यन्दी एवम्-जठराग्नि तथा दृष्टि को मन्द करनेवाली होती है। स्विन्न (चिकनी) सुपारी-त्रिदोषनाशक होती है तथा जिसका मध्यभाग दृढ़ हो वह सुपारी उत्तम होती है ॥ ५१ ॥

१३ सुपारी

हि०-सुपारी, सोपारी, सुपाड़ी, कसेली। **बं०**-सुपारी, सुपारी। **म०**-सुपारी, पोफळ (फळ)। **गु०**-सोपारी। **ता०**-कमुगु। **क०**-कडि, अडिके। **ते०**-पोका। **फा०**-पोपिल। **अ०**-

फोफिल। **अं०**-Betel Nut Palm (बेटल् नट् पाम)। **ले०**-*Areca catechu Linn.* (एरेका कॅटेच्यु)। Fam. Palmae (पामी)।

सुपारी एक बहुत प्रसिद्ध वस्तु है जो प्रतिदिन के व्यवहार में पान के साथ या अकेली खाने के काम आती है। इसके वृक्ष बङ्गाल, आसाम, सिलहट, मैसूर, कनारा, मलाबार तथा दक्षिण हिन्दुस्तान के कई प्रान्तों में तटीय प्रदेशों में लगाये हुये पाये जाते हैं।

यह वृक्ष ताड और नारियल के समान ऊँचा (४०-६० फीट) पर बाँस के समान पतला होता है। पत्ते-बड़े २, पक्षवत्, नारियल के पत्तों के समान ४ से ६ फीट लम्बे, जिनमें ऊपर के उपपक्ष (Pinnae) मिले हुये तथा वृन्त का नीचे का भाग चौड़ा तथा फैला हुआ होता है। फूल-पत्रकोशावृत गुच्छ में, जिन में पुंपुष्प छोटे, अधिक तथा स्त्रीपुष्प बड़े रहते हैं। फल-अंडाकार, १½-२″ चौड़ा तथा २-२½″ लम्बा एवं पकने पर चमकीले नारंगी रंग का होता है जिसके अन्दर सुपारी (बीज) रहती है।

सुपारी आकार, नाप तथा स्वाद आदि के अनुसार अनेक प्रकार की होती है। परन्तु एक साधारण सुपारी (धूसर भूरे रङ्ग की) और दूसरी (लाल सुपारी) दक्षिणी सुपारी ये ही दो प्रसिद्ध हैं। इनमें से दूसरी उबाल कर बनाते हैं। पकने से कुछ पूर्व सुपारी को निकाल कर जल तथा पूर्व वर्ष के तैयार 'घन' (छोगारू) में उबालते हैं। नया क्वाथ बनाना हो तो जामुन, लाल चंदन, पीपल इत्यादि की छाल से बनाते हैं। इससे स्वाद, टिकाऊपन तथा रंग अच्छा हो जाता है तथा इसके दोष दूर हो जाते हैं। बालू में भूनकर खाने से भी दोष दूर हो जाते हैं।

रासायनिक संगठन—साधारण सुपारी में टैनिन २१ से ३०% किन्तु चिकनी सुपारी में ९ से १५% रहता है। इसमें खटिक फॉस्फोरस, लौह तथा अनेक क्षाराभ जिनमें से मुख्य अॅरेकोलिन (Arecoline, $C_6H_{11}O_2N$, ०·१%) है, पाये जाते हैं। यह क्षाराभ वात नाड़ी संस्थान के लिये विषैला है जिससे आक्षेप तथा अंगघात होता है। इसकी क्रिया पाइलोकार्पिन (Pilocarpine) की तरह होती है। इसके लवण के इन्जेक्शन घोड़ों के पेट फूलकर पीड़ा होने में देते हैं जिससे विरेचन होता है। जानवरों के चिपटे कृमि में भी इसे देते हैं। मनुष्यों में इसका उपयोग नहीं करते हैं। इसमें एक लाल रंग पाया जाता है जो क्षारीय खौलते जल में घुलता है तथा अम्ल से प्रक्षेपित हो जाता है। छोगारू का कत्थे जैसा उपयोग भी किया जाता है।

गुण और प्रयोग - यह शीत रूक्ष, कषाय, मुखशुद्धिकर, वृष्य एवं कृमिघ्न होती है। ताजी मादक एवं कभी-कभी चक्कर लाने वाली होती है। इसे वातनाडियों के लिये बल्य तथा आर्तवप्रवर्तक भी मानते हैं। इसको चबाने से कुछ उत्तेजना आती है तथा मन प्रसन्न होता है। इसका उपयोग अतिसार, कृमि तथा मूत्रविकार आदि में करते हैं। इसको जलाकर मंजन भी बनाते हैं।

(१) चिपटे कृमि के लिये एक कच्ची सुपारी दूध में पीस कर पिलाते हैं।

(२) रक्तमिश्रित आंव में ¼-½ सुपारी का चूर्ण दिया जाता है।

विष प्रभाव—अधिक मात्रा में यह विषैली होने के कारण केवल जानवरों के कृमि में ही इसका उपयोग अब किया जाता है। हमेशा चबाने से कैन्सर होने की संभावना व्यक्त की गई है।

अथ तालः (ताड)। तन्नामानि तत्पक्वफलमज्जगुणाँश्चाह

तालस्तु लेख्यपत्रः स्यात्तृणराजो महोन्नतः ॥ ५२॥
पक्वं तालफलं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम्। दुर्जरं बहुमूत्रञ्च तन्द्राऽभिष्यन्दशुक्रदम् ॥ ५३ ॥

तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मदकरो लघुः। श्लेष्मलो वातपित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः ॥५४॥

ताड़ के संस्कृत नाम-ताल, लेख्यपत्र, तृणराज तथा महोन्नत ये सब हैं। पका ताड़ का फल-पित्त, रक्त तथा कफ की वृद्धि करनेवाला, देरमें हजम होनेवाला, मूत्र की अत्यन्त प्रवृत्ति करने वाला एवम्-तन्द्रा, अभिष्यन्द तथा शुक्र को उत्पन्न करनेवाला होता है। ताड़ की मींगी जो कि खूब तैयार होगई हो वह किञ्चित मदकारक, लघु, कफजनक, स्नेहयुक्त, मधुर, सारक एवम्-वात तथा पित्त का नाशक होती है॥ ५२-५४॥

अथ तालरसः (ताडी)। नवीनस्य प्राचीनस्य च नामानि गुणाँश्चाह

तालजं तरुणं तोयमतीव मदकृन्मतम्। अम्लीभूतं तदा तु स्यात्पित्तकृद्वातदोषहृत्॥ ५५॥

ताड़ का ताजाजल (ताड़ी)-अत्यन्त मदकारक होता है। यदि वही पुराना होने से खट्टा होगया हो तो पित्तकारक एवम्-वात दोष को दूर करने वाला होता है॥ ५५॥

१४ ताड़

हिं०-ताड़, ताल, तार। बं०-ताल। म०-ताड़। ता०-पनै मरम। क०-तालिमारा। ते०-ताति। गु०-तड़। फा०-ताल। अ०-तार। अं०-The Palmyra Palm (दी पामीरा पाम्)। ले०-*Borassus flabellifer Linn.* (बोरेसस् फ्लेबेलिफेर)। Fam. Palmae (पामी)।

यह प्रायः सभी स्थानों पर विशेषकर शुष्क प्रदेशों में, पेनिनशुला के तटीय प्रदेशों, बंगाल तथा बिहार में होता है।

ताड़ का वृक्ष-१०० फीट तक ऊँचा होता है और उसके स्तम्भ की गोलाई २½-७ फीट तक होती है। स्तम्भ के सिरे पर ३ से ५ फीट के घेरे में ३०-४० पत्ते एक साथ सटे हुये गोलाकार, और कटे हुए किनारेदार होते हैं। पत्रदंड-२ से ४ फीट का होता है। यह पुरुष और स्त्री जाति के भेद सेदो प्रकार का होता है। स्त्री जाति पर नारियल के फल के समान फल लगते हैं और पुरुष जाति पर बाल आते हैं। पुंपुष्पव्यूह का गलती से गजपिप्पली के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। फल बड़े तथा रेशेदार होते हैं जिनके भीतर तीन खण्ड होते हैं जिनमें से प्रत्येक में बीज होता है। इसके पुष्पित अक्ष को चीरा लगाने से रस प्राप्त होता है जिसे ताजे अवस्था में नीरा तथा बाद में ताड़ी कहते हैं। इसको पकाकर गुड़ तथा मिश्री प्राप्त की जाती है।

रासायनिक संगठन—नीरा में शर्करा तथा यीस्ट (Yeast) रहता है। यीस्ट से विटामिन बी प्राप्त होता है। पुंजाति से प्राप्त नीरा में शर्करा कुछ अधिक होती है। नीरा को रखने से स्वतः संधान प्रारम्भ हो जाता है तथा ६ से ८ घंटे के अन्दर इसमें ३% तक मद्यसार एवं ०·१% अम्ल तैयार हो जाता है। बाद में मद्यसार की मात्रा ५% तक बढ़ कर रुक जाती है। तत्पश्चात् अम्ल की वृद्धि होकर सिरका बन जाता है।

गुण और प्रयोग—इसका फल मधुर, शीत, बल्य, बृंहण तथा पित्तहर है। बीज मूत्रल तथा वातपित्तशामक है। इसके नूतन पुष्पित भाग की राख अम्लतानाशक एवं विषमज्वरहर होती है। इसका उपयोग अम्लपित्त में तथा विषमज्वर में विशेषकर यकृत प्लीहावृद्धि होने पर करते हैं तथा चावल का मांड के साथ लेप भी करते हैं। इससे त्वचा लाल होकर फोड़े आते हैं।

नीरा उत्तेजक, कफनाशक एवं मूत्रल होती है तथा इसे आल्हाद कारक पेय के रूप में पीते हैं। तालमिश्री कास, वक्ष के विकार तथा बालकों के लिये सारक रूप में प्रयोग में आती है।

अथ बिल्वः (बेल)। तन्नामानि तद्बालफलनामगुणाँश्चाह

बिल्वः शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि। बालं बिल्वफलं बिल्वकर्कटी बिल्वपेशिका॥
ग्राहिणी कफवातामशूलघ्नी बिल्वपेषिका॥ ५६॥

बेल के संस्कृत नाम-बिल्व, शाण्डिल्य, शैलूष, मालूर तथा श्रीफल ये सब हैं। बेल के कच्चे फल के संस्कृत नाम-बालबिल्वफल, बिल्वकर्कटी तथा बिल्वपेशिका ये सब हैं।

बेल के कच्चे फल-ग्राही एवम् कफ, वात, आम तथा शूल को नष्ट करने वाले होते हैं॥५६॥

अन्यच्च

बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपनं पाचनं कटु। कषायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम्॥

ग्रन्थान्तर में कहे हुये कच्चे बेल के फल के गुण-यह ग्राही, अग्निदीपक, पाचक, कटु-तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, उष्ण, लघु, स्निग्ध एवम् वात तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं॥ ५७॥

अथ पक्वतत्फलगुणानाह

पक्वं गुरु त्रिदोषं स्याद् दुर्जरं पूतिमारुतम्। विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वह्निमान्द्यकृत्॥५८॥

बेल का पका फल-मधुर रसयुक्त, गुरु, त्रिदोषजनक, देर में हजम होने वाला, दुर्गन्धयुक्त अधोवायु को करने वाला, विदाही, विष्टम्भ तथा अग्निमन्दता को उत्पन्न करने वाला होता है॥ ५८॥

अथ पक्वापेक्षया बालस्य बिल्वफलस्य गुणाधिक्यमाह

फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम्॥ ५९॥
बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम्। द्राक्षाबिल्वशिवाऽऽदीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम्॥

पके फल की अपेक्षा बेल के कच्चे फल के गुणाधिक्य का वर्णन—सामान्यरूप से फलों में पका फल ही अधिक गुणकारी कहा गया है किन्तु यह नियम बेल के फल के लिये नहीं है ऐसा समझना चाहिये, क्योंकि बेल का कच्चा फल ही विशेष गुणकारी होता है।

एवम्—द्राक्षा (दाख), बेल तथा हरड़ आदि के फल यदि सूखे हों तो अधिक गुणकारी होते हैं॥ ५९-६०॥

१५ बेल का फल

नोट—बेल के सम्बन्ध में अन्य वर्णन गुडूच्यादिवर्ग में पृ० २७४-२७६) किया जा चुका है।

अथ कपित्थः (कैथ)। तन्नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

कपित्थस्तु दधित्थः स्यात्तथा पुष्पफलः स्मृतः। कपिप्रियो दधिफलस्तथा दन्तशठोऽपि च॥
कपित्थमामं संग्राहि कषायं लघु लेखनम्। पक्वं गुरु तृषाहिक्काशमनं वातपित्तजित्॥
स्यादम्लं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम्॥ ६२॥

कैथ के संस्कृत नाम—कपित्थ, दधित्थ, पुष्पफल, कपिप्रिय, दधिफल तथा दन्तशठ ये सब हैं। कैथ का कच्चा फल—कषाय रसयुक्त, संग्राही, लघु तथा लेखन होता है। पका फल—अम्ल तथा कषाय रसयुक्त, गुरु, कण्ठ को साफ करने वाला, ग्राही, देर में हजम होने वाला एवम्-प्यास तथा हिक्का को शमन करने वाला और वात तथा पित्त को दूर करने वाला होता है॥

१६ कैथ

हिं०-कै(कैं)थ, कैथा, कैंत, कइंत। बं०-कयेद्, कयेत् बेल। म०-कंवठ। गु०-कोठ। क०-बेलळु। ते०-वेलग। ता०-वलामरं। अं०-Wood Apple (वुड ॲपल), Elephant Apple (एलिफेन्ट ॲपल्)। ले०-*Feronia elephantum Correa* (फेरोनिया एलिफॅन्टम्)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

यह इस देश के प्रायः सूखे प्रान्तों में अधिक उत्पन्न होता है तथा दक्षिण में वन्य अवस्थाओं में पाया जाता है।

इसका वृक्ष-बहुत बड़ा होता है और उस पर सीधे कांटे होते हैं। वृक्ष से बबूर के गोंद के समान एक प्रकार का गोंद निकलता है। पत्ते-संयुक्त, सदलपर्ण, ३ से ४ इञ्च लंबे होते हैं। पत्रक-अंडाकार या अभिअंडाकार, छोटे छोटे, एक-एक सींक पर तीन तीन अथवा ५ या ७-७ रहते हैं। फूल-फीके लाल रंग के होते हैं। फल-२-३ इञ्च के घेरे में गोल होते हैं और छिलका कठोर होता है। भीतर सुगंधित, स्वादु, खाने लायक गूदी होती है और गूदी में छोटे-छोटे अनेक चिपटे बीज होते हैं। इसमें एक आश्चर्यजनक गुण यह है कि यदि हाथी कैंत के फल को खाजावे तो इसका गूदा हाथी के पेट में रह जाता है और गूदा रहित अखंडित फल मल के साथ बाहर निकल आता है। इसके दो भेद होते हैं। एक में फल छोटे तथा अम्ल होते हैं। तथा दूसरे में फल बड़े तथा मीठे होते हैं। पक फल को चीनी के साथ या शरबत बनाकर या चटनी के रूप में खाया जाता है। इसकी जेली भी बनाई जाती है। इसके पत्र, गोंद तथा फल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—फल में खनिज तत्व विशेषकर खटिक, फॉस्फोरस तथा लोह अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त राइबोफ्लेविन (Riboflavine) तथा विटामिन 'सी', एवं पेक्टिन (Pectin 3 to 5%) होता है। इसके पत्तों में उड़नशीलतैल ०·७३% होता है जिसमें मुख्य भाग एस्ट्रेगॉल (Estragol, $C_{10}H_{12}O$) का होता है।

गुण और प्रयोग—इसका फल-गुणों में बेल की तरह होता है। यह विशेष रूप से रक्तपित्त-शामक होता है। पत्ते वातानुलोमक होते हैं।

(१) इसका फल रक्तपित्त, अतिसार तथा प्रवाहिका में दिया जाता है। इसके गोंद से उदर की मरोड़ कम होती है।

(२) बच्चों के अजीर्ण में पत्तों का उपयोग करते हैं।

अथ नारङ्गः (नारङ्गी)। तन्नामानि मधुराम्लनारङ्गयोर्गुणाँश्चाह

नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक्सुगन्धो मुखप्रियः॥ ६३॥
नारङ्गं मधुराम्लं स्याद्रोचनो वातनाशनः। अपरं त्वम्लमत्युष्णं दुर्जरं वातहृत् सरम्॥६४॥

नारङ्गी के संस्कृत नाम—नारङ्ग, नागरङ्ग, त्वक्सुगन्ध तथा मुखप्रिय ये सब हैं।

नारङ्गी-मधुर तथा अम्लरसयुक्त, रोचक एवम् वातनाशक होती है और दूसरी जाति की नारङ्गी अम्लरसयुक्त, अत्यन्त उष्ण, देर में हजम होने वाली, सारक तथा वातनाशक होती है॥

१७ नारङ्गी

हिं०-नारङ्गी, संतरा, संत्रा। बं०-कमलानेबु। म०-नारिंग, संत्रा। गु०-नारङ्गी। फा०-किरमेअज नारंज, नारंज। अ०-नारंज। अं०-Orange (ऑरेंज)। ले०-*Citrus reticulata Blanco* (साइट्रस रेटिक्युलेटा)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

यह सब प्रान्तों की वाटिकाओं में रोपण किया जाता है। आसाम, सिक्किम, मध्य भारत, पंजाब तथा कुर्ग में इसकी अधिक खेती की जाती है।

इसका वृक्ष-छोटा होता है। पत्ते-चिकने ४-५ इञ्च लम्बे नीबू के पत्ते के आकार वाले होते हैं। पर्णवृन्त करीब-करीब पक्षहीन होता है। फूल-सफेद रंग के आते हैं और उनसे सुगन्ध आती है। फल-२ इञ्च के घेरे में गोलाकार और दोनों ओर दबे हुए होते हैं, पकने पर वे नारङ्गी रङ्ग के हो जाते हैं।

इसकी एक अन्य जाति होती है जिसमें फल बहुत खट्टा होता है उसे सा. ऑरेन्शिअम् लिन. (C. aurantium Linn.) कहते हैं। इसका चिकित्सा की दृष्टि से यह महत्त्व है कि इसमें विटामिन 'ए' का पूर्वरूप एवं विटामिन बी बहुत होता है तथा इसके छिलके कुछ दीपन एवं सुगंधि के लिये काम में आते हैं।

संतरे के स्थान, स्वरूप आदि भेद से अनेक भेद पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—छिलके में एक तेल होता है जिसमें लिमोनेन (Limonene) बहुत होता है। इसकी शाखा तथा पत्तों से पेटिट्ग्रेन आईल (Petitgrain oil) प्राप्त किया जाता है। फल में विटामिन 'सी', 'बी', 'ए' एवं खनिज द्रव्य, शर्करा, अम्ल द्रव्य एवं पेक्टिन आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका रस ज्वरहर, तृषाशामक, दुर्जर, हृद्य, रुचिकारक एवं वातघ्न है।

अथ तिन्दुकः (तेंदू)। तन्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणाँश्चाह

तिन्दुकः स्फूर्जकः कालस्कन्धश्चासितकारकः। स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु॥
पक्वं पित्तप्रमेहास्रश्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु॥ ६५॥

तेंदू के संस्कृत नाम—तिन्दुक, स्फूर्जक, कालस्कन्ध तथा असितकारक ये सब हैं।

तेंदू का कच्चा फल-ग्राही, वातजनक, शीतल एवम् लघु होता है। पकाफल-मधुर रस-युक्त, गुरु एवम्-पित्त, प्रमेह, रक्तविकार तथा कफ का नाशक होता है।

१८ तेंदू

हिं०-तेंदू, गाब, गाभ। बं०-गाब। म०-टेंबुरणी। गु०-टींबरू। ते०-तुमिकि। ता०-तुम्बिक। अं०-Gaub Persimon (गॉब पर्सिमॉन्)। ले०-*Diospyros embryopteris Pers.* (डायोस्पाईरॉस एम्ब्रीओप्टेरिस्)। Fam. Ebenaceae (एबेनेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। विशेष कर बङ्गाल में अधिक होता है।

इसका वृक्ष-मध्यमाकार का, शाखा-प्रशाखा करके सघन और बारहोमास हरा-भरा रहता है। छाल-भूरे रंग की होती है। पत्ते-२ इञ्च चौड़े, ५-९ इञ्च तक लम्बे, किंचित् अण्डाकार, आयताकार, चिकने, चर्मसदृश और चमकीले होते हैं। फूल-सफेद, पत्रदण्ड के पास झुमकों में आते हैं। फल-२-३ इञ्च के घेरे में गोलाकार और पकने पर कुछ पीले रंग के हो जाते हैं। ये रक्तकिट्टावरण से ढके रहते हैं। इसके भीतर लसीली गूदी होती है। मल्लाह लोग सन के साथ इसकी गूदी को मिला कर नाव के छेदों को बन्द करते हैं। बीज-४ से ८ रहते हैं। इसको बंदर बहुत खाते हैं। इस आधार पर इसे 'मर्कटतिन्दुक' एवं इसकी अन्य जाति डॉ० मेलॅनोक्जाइलोन (D. melanoxylon, Roxb.) को तिन्दुक श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने माना है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में तेल होता है। छाल तथा फल में टैनिन होता है। फलों में पेक्टिन बहुत होता है। इसके ईथरीय सत्त्व में, ईस्चेरिचिया कोलाई (Escherichia coli) जीवाणुनाशक शक्ति होती है।

गुण और प्रयोग—इसकी गुद्दी अच्छी संग्राहक होती है। इसको जीर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका में देते हैं। बीजों का तेल भी अतिसारादि में दिया जाता है। विषम ज्वर में छाल देते हैं। मुखपाक में फल के फांट से कुल्ला कराते हैं तथा व्रण एवं क्षत पर स्वरस लगाते हैं।

मात्रा—शुष्क गुद्दी १ से ५ रत्ती।

अथ कुपीलुः। यस्य फलं कुचिला इति लोके 'मकरतेंदुआ' इति च। तन्नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

तिन्दुको यस्तु कथितो जलदो दीर्घपत्रकः ॥ ६६ ॥
कुपीलुः कुलकः काकतिन्दुकः काकपीलुकः। काकेन्दुर्विषतिन्दुश्च तथा मर्कटतिन्दुकः ॥६७॥
कुपीलुः शीतलं तिक्तं वातलं मदकृल्लघु। परं व्यथाहरं ग्राहि कफपित्तास्रनाशनम् ॥६८॥

कुपीलु (जिसके फल को लोक में 'कुचिला' कहते हैं तथा जो 'मकरतेंदुआ' भी कहलाता है) के संस्कृत नाम – तिन्दुक, जलद, दीर्घपत्रक, कुपीलु, कुलक, काकतिन्दुक, काकपीलुक, काकेन्दु, विषतिन्दु तथा मर्कटतिन्दुक ये सब हैं।

कुचिला–तिक्तरसयुक्त, शीतल, वातजनक, मदकारक, लघु, अत्यन्त व्यथा को दूर करने वाला, ग्राही एवम्–कफ, पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ६६–६८ ॥

१९ कुचला

हि०–कुचला, कुचिला। **बं०**–कुँचिला। **म०**–काजरा। **गु०**–झेर कोंचला। **क०**–कांजि, हेमुष्टि, कासर। **ते०**–मुसिडे। **ता०**–एट्टेमारं, काकोंडीं। **फा०**–कुचूला, फुलूसंमाही, हजराकी। **अ०**–हब्बुलगुराब, अजराकि, खानेकुलुल् केल्ब। **अं०**–Poison-nut tree (पॉइजन नट ट्री); Nux-vomica tree (नक्स-वोमिका ट्री)। **ले०**–*Strychnos nux-vomica Linn.* (स्ट्रिक्नॉस नक्स वोमिका)। Loganiaceae (लोगेनिएसी)।

यह गोरखपुर, बिहार, उड़िसा तथा विशेष रूप से दक्षिण में पाया जाता है।

इसका वृक्ष–बड़ा होता है एवं किसी किसी में कांटे भी होते हैं। स्तम्भ–मोटा और सीधा रहता है। पत्ते–३ से ६ इञ्च तक लंबे, $1\frac{1}{4}$–३ इंच चौड़े, दीर्घवृत्ताकार, चिकने चमकीले तथा ५ शिराओं से युक्त जिनमें पार्श्व की शिराएँ अस्पष्ट रहती हैं। फूल–छोटे-छोटे हरापन युक्त सफेद आते हैं। फूला हुआ वृक्ष बहुत सुहावना दिखाई पड़ता है। फल–गोल, चिकने, नारङ्गी के बराबर १ से ३ इञ्च व्यास में और उसी रङ्ग में आते हैं। इसके भीतर एक प्रकार का कड़वा सफेदकोमल पदार्थ (गूदी) भरा रहता है जिसमें अनेक बीज रहते हैं। बीज–$\frac{3}{4}$ इञ्च के घेरे में, चिपटे, गोल, एक तरफ से उन्नतोदर तथा दूसरी तरफ से नतोदर और चमकीले सफेद मखमली रेशों से भरे रहते हैं।

इसके बीज, छाल, पत्ते, काष्ठ आदि का उपयोग किया जाता है। बीजों का ही अधिक उपयोग होता है।

शोधन—बीजों को शोधन करके व्यवहार करना चाहिये। सात दिन गोमूत्र में रखकर छिलके निकाल कर, गोदुग्ध में उबाले। फिर गाय के घी में भून कर चूर्ण बना प्रयोग करें।

रासायनिक संगठन—इसके समस्त भागों में प्रधान रूप से स्ट्रिकनीन् (Strychnine) तथा ब्रूसीन (Brucine) एवं अल्प अन्य क्षाराभ पाये जाते हैं। छाल में ब्रूसीन ही अधिक होता है। बीज में १·५२–३·४१% क्षाराभ होता है जिसमें करीब आधा स्ट्रिकनीन होता है। बीजों में एक ग्लूकोसाइड, लोगॅनिन् (Loganin) एवं अत्यल्प ताम्र पाया जाता है। अन्य जाति के बीजों की मिलावट से इसके क्षाराभों की मात्रा में कमी हो जाती है अन्यथा बीजों को रखने से इसमें परिवर्तन नहीं होता।

गुण और प्रयोग—यह कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, उत्तेजक, बल्य एवं वाजीकर है। इसका उपयोग, पाचन के विकार, वातरोग तथा हृदय की दुर्बलता में किया जाता है।

यह केन्द्रीय वातनाड़ी संस्थान, विशेष कर सुषुम्ना तथा प्रेरक केन्द्रों को उत्तेजित करता है।

(१) इसका चूर्ण देने से भूख बढ़ती है तथा पाचक रसों की वृद्धि होती है। इसके टिंचर से आंत्र की गति बढ़ती है इसलिये इसे जीर्ण विबंध में अन्य मृदुविरेचन औषधियों के साथ देते हैं। कुपचन, शूल आदि विकारों में इससे लाभ होता है।

(२) वातिक संस्थान के लिए उत्तेजक होने के कारण अनेक वातविकारों जैसे अर्दित, अर्धांग, गतिभ्रंश, ज्ञानभ्रंश, पेशीशोष, कंप, नाडीशूल, बाधिर्य, घटसर्प से उत्पन्न या अधिक बोलने से उत्पन्न आवाज न निकलना एवं तंबाकू के अधिक सेवन से उत्पन्न आन्ध्य आदि में इससे लाभ होता है।

(३) बच्चों के शय्यामूत्र, हस्तमैथुन या अतिमैथुन से उत्पन्न नपुंसकता में इसे देते हैं। वार्धक्य में वाजीकरण के लिये कुचला, लोह तथा काली मिरिच देते हैं।

(४) हृदय तथा श्वसन-संस्थान की दुर्बलता में इसके देने से उन-उन अंगों को बल मिलता है। इसके साथ अन्य औषधियों को देना पड़ता है।

(५) इसके जड़ की छाल को नींबू के रस में घोंटकर बनाई गोली विसूचिका में दी जाती है। कृमियुक्त व्रण में पत्तों का पुल्टिस लगाया जाता है। गाय को पत्ते खिलाने से दूध में कड़ुवाहट आती है तथा वह अधिक सुपाच्य या पाच्य माना जाता है। कुछ पक्षी, जानवर इसके फल को खाते हैं। जानवरों को मारने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

विषलक्षण एवं चिकित्सा—इसको अधिक मात्रा में देने से मृत्यु हो सकती है इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। प्रारम्भ में इससे बेचैनी, घबड़ाहट, प्रतिवर्ती (Reflex) का बढ़ना, पेशीस्फुरण, गले एवं चलने में भारीपन एवं एकाएक किसी अंग में विक्षेप आदि लक्षण होते हैं। ये लक्षण १५ से २० मिनट में प्रारम्भ होते हैं। कभी कभी एक घंटे बाद भी होते हैं किन्तु एकाएक तीव्र रूप में। बाद में स्फुरण, कंप तथा धनुर्वात जैसे आक्षेप आने लगते हैं। मृत्यु श्वासावरोध से होती है। चिकित्सा में प्रथम वमन कराना, जिसके लिये अर्कमूलत्वचा, मैनफल, झिंक सल्फेट का उपयोग या नलिका द्वारा आमाशय-प्रक्षालन कराना चाहिये। फिर दूध में गाय का घी या अंडे की सफेदी, या शोधित कोयला का चूर्ण या पोटॅशियम् परमैंग्नेट आदि द्रव्य खिलाना चाहिये। पेशियों को शिथिल करने वाले द्रव्य जैसे अफीम, बेलाडोना, कपूर, गाँजा, तंबाकू आदि का उपयोग मुख द्वारा या सूचिकाभरण से करना चाहिये। इसके लिये क्लोरोफार्म या ईथर सुंघाना ज्यादा अच्छा है। बारबिटोन श्रेणी की औषधियों का शिरा द्वारा सूचिकाभरण शिथिलता तथा नींद लाने के लिये अच्छा है। इसकी साधारण घातक मात्रा, बीजों की ११·५५ से ४६·२८ ग्रेन तथा स्ट्रिकनीन की १·५४ ग्रेन है। इससे कम से भी मृत्यु हुई है तथा इससे बहुत अधिक मात्रा के सेवन के पश्चात् भी चिकित्सा से रोगी बचाये गये हैं।

मात्रा—१ से ४ ग्रेन ($\frac{1}{2}$–२ रत्ती)।

अथ राजजम्बू (बड़ी जामुन)। तन्नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

फलेन्द्रा कथिता नन्दी राजजम्बूर्महाफला। तथा सुरभिपत्रा च महाजम्बूरपि स्मृता।
राजजम्बूफलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम् ॥ ६९ ॥

बड़ी जामुन के संस्कृत नाम—फलेन्द्रा, नंदी, राजजम्बू, महाफला, सुरभिपत्रा और महाजम्बू ये सब हैं।

बड़ी जामुन का फल—स्वादिष्ट, विष्टम्भक, गुरु तथा रोचक होता है ॥ ६९ ॥

२० बड़ीजामुन

हि०—बड़ी जामुन, फरेन्द (न), फड़ेना, फलेन्द्रा, राजजामुन। **बं०**—बड़जाम, कालजाम। **म०**—जाम्भूळ। **गु०**—जाम्बुन। **क०**—दोड्डनिरलु, दोदुनिरली (लु)। **ते०**—पेद्दनेरडि, नेरडु चेट्टु। **ता०**—नागै, सम्बल। **अं०**—Jambul Tree (जाम्बुल ट्री)। **ले०**—*Eugenia jambolana Lam.* (युजेनिया जम्बोलेना)। Syzygium cumini Skeels (सिझिजियम क्यूमिनाइ)। Fam. Myrtaceae (मिर्टेसी)।

यह अत्यन्त शुष्क भागों को छोड़कर सब प्रान्तों में पायी जाती है। इसका वृक्ष बड़ा होता है और वह सदा हरा भरा रहता है। पत्ते-विपरीत, दीर्घवृत्ताकार, दीर्घवृत्ताकार भालाकार, अंडाकार या आयताकार, लम्बाग्र या कुण्ठिताग्र, चिकने, चमकीले, ३ से ६ इञ्च लंबे तथा ½ से १ इञ्च लंबेवृन्त से युक्त होते हैं। फूलों की मञ्जरियाँ किञ्चित् हरापन युक्त सफेद होती हैं और उससे सुगन्ध आती है। फल-आध से डेढ इञ्च तक लम्बे, गोल, पकने पर बैंगनीयुक्त काले रङ्ग के हो जाते हैं। उसमें गुठी होती है।

जाति—जामुन की कई जातियाँ होती हैं। भावप्रकाश में आगे जलजम्बू का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त क्षुद्रजम्बू, काकजम्बू, भूमिजम्बू (E. operculata), गुलाबजामुन (E. jambos) आदि भेद पाये जाते हैं। राजजंबू का वर्णन ऊपर किया गया है जो सबमें श्रेष्ठ है। जलजम्बू या क्षुद्रजम्बू का आगे वर्णन किया गया है।

जामुन के फल, मज्जा, छाल तथा पत्तों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजों में एल्लेजिक् ॲसिड (Ellagic acid), सुगन्धितैल, स्थिरतैल, तथा राल होती है।

गुण और प्रयोग—जामुन वातजनक, कफपित्तशामक, ग्राही, मूत्रसंग्रहणीय तथा पत्ते वमनरोधक हैं।

(१) इसकी छाल कषाय एवं स्तंभन होने के कारण इसके क्वाथ का उपयोग गण्डूष तथा व्रण प्रक्षालन के लिये तथा अतिसार आदि में करते हैं। इसका ताजा रस बकरी के दूध में मिलाकर बच्चों के अतिसार में देते हैं।

(२) बीज मधुमेह के लिये उपयोगी समझे जाते हैं। कुत्तों में इसके जलीय सत्त्व के सूचिकाभरण से रक्तगत शर्करा का प्रमाण कम हो जाता है किन्तु मुख द्वारा प्रयोग से यह प्रभाव नहीं दिखलाई देता।

(३) पत्तों का रस रक्तातिसार तथा अत्यार्तव में दिया जाता है।

(४) पत्तों को पीसकर लोहचूर्ण में मिलाकर रखने से एक उत्तम प्रकार का लोह क्षार तैयार होता है जिसे पांडु तथा स्त्रियों के पांडु सहित अतिसार में देते हैं।

(५) इसका सिरका तथा आसव दीपन, पाचन होता है तथा उसे मधुमेह, अतिसार आदि में देते हैं।

मात्रा—बीजचूर्ण १ से ३ माशा; स्वरस १ से २ तोला।

अथ जलजम्बुका (छोटी जामुन, नदी जामुन)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

क्षुद्रजम्बुः सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका। जम्बूः संग्राहिणी रूक्षा कफपित्तास्रदाहजित् ॥

छोटी जामुन के संस्कृत नाम—क्षुद्रजम्बू, सूक्ष्मपत्रा, नादेयी तथा जलजम्बुका ये सब हैं। **छोटी जामुन**-संग्राही, रूक्ष एवम्-कफ, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को दूर करने वाली होती है ॥ ७० ॥

२१ छोटी जामुन

हि०—छोटी जामुन, कठ जामुन, वन जामुन। **ले०**—*Eugenia heyneana Wall.* (यूजेनिया हेनियाना)। Fam. Myrtaceae (मिर्टेसी)।

इसके छोटे-छोटे गुल्मवत् वृक्ष या गुल्म होते हैं। यह जामुन का ही भेद है। यह नदी नालों के किनारे अधिक होता है। अन्य भेदों का उल्लेख जामुन के साथ किया जा चुका है।

अथ बदरी (बेर)। तस्या नामान्याह

पुंसि स्त्रियाञ्च कर्कन्धूर्बदरी कोलमित्यपि ॥ ७१ ॥
फेनिलं कुवलं घोण्टा सौवीरं बदरं महत्। अजप्रिया कुहा कोली विषमोभयकण्टका ॥७२॥

छोटे बेर के संस्कृत नाम—कर्कन्धू (यह पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग में होता है), बदरी, अजप्रिया कुहा, कोली, विषमा तथा उभयकण्टका ये सब हैं।

बड़े बेर के संस्कृत नाम—फेनिल, कुवल, घोण्टा और सौवीर ये सब हैं।

बड़े बेर से कुछ छोटा जो होता है उसे कोल कहते हैं ॥ ७१-७२ ॥

तत्र बदरविशेषाणां लक्षणानि गुणांश्चाह

पच्यमानं सुमधुरं सौवीरं बदरं महत्। सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ ७३ ॥
बृंहणं पित्तदाहास्रक्षयतृष्णानिवारणम्। सौवीरं लघु सम्पक्वं मधुरं कोलमुच्यते ॥ ७४ ॥
कोलन्तु बदरं ग्राहि रुच्यमुष्णञ्च वातहृत्। कफपित्तकरं चापि गुरु सारकमीरितम् ॥ ७५ ॥
कर्कन्धूः क्षुद्रबदरं कथितं पूर्वसूरिभिः। अम्लं स्यात्क्षुद्रबदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ ७६ ॥
स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वातपित्तापहं स्मृतम्।
शुष्कं भेद्यग्निकृत्सर्वं लघु तृष्णाक्लमास्रजित् ॥ ७७ ॥

बेर के भेद तथा उनके लक्षण और गुण—**सौवीर के लक्षण**—जो बेर, पका हुआ अत्यन्त मीठा और बड़ा हो उसे सौवीर कहते हैं। **सौवीर (बेर)**—शीतल, मल का भेदन करने वाला, गुरु, शुक्रजनक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक) एवम्-पित्त, दाह, रक्तविकार, क्षय तथा प्यास को दूर करने वाला होता है।

कोल के लक्षण—जो सौवीर नामक बेर छोटा, मधुर तथा पका हुआ हो उसे कोल समझना चाहिये। **कोल (बेर)**—ग्राही, रोचक, उष्ण, कफ तथा पित्तजनक, गुरु, सारक एवम् वातनाशक होता है।

कर्कन्धू के लक्षण—छोटे बेर को कर्कन्धू कहते हैं। **कर्कन्धू**–अम्ल, तिक्त, कषाय तथा किञ्चित् मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, गुरु एवम्–वात तथा पित्त नाशक है।

सभी प्रकार के बेर यदि सूखे हों तो वे—मलभेदक, जठराग्निवर्धक, लघु एवम् प्यास, क्लान्ति तथा रक्तविकार के नाशक होते हैं॥ ७३–७७॥

नोट—भावप्रकाशकार बेर के तीन भेद सौवीर, कोल तथा कर्कन्धू लिखते हैं जो क्रमशः एक-दूसरे से छोटा होता है। सौवीर सबसे बड़ा है जिसे उन्नाव या राजबदर कहा जाता है। इसका उपयोग करना चाहिये। दूसरा कोल है जो साधारण बेर होता है। तीसरा सबसे छोटा कर्कन्धू है जिसे झड़बेरी, झड़बेर कहते हैं। राजनिघंटु ने चौथा भेद घोण्टा (Zizyphus xylopyra, Willd—झिझीफस् क्साइलोपाइरा) लिखा है जिसे काठ-बेर कहते हैं। भावप्रकाशकार ने इसे सौवीर का पर्याय बतलाया है। एक अन्य वल्ली बदर (*Z.* oenoplia–झि. इनोप्लिया) एवं अन्य भेद भी होते हैं। यहाँ संक्षेप में मुख्य भेदों का वर्णन किया गया है।

२२ उन्नाव (सौवीर, राजबदर)

सं०–सौवीर, राजबदर। **हि०**–उन्नाव। **अं०**–Jujube (जुजुब)। **ले०**–*Zizyphus sativa Gaertn.* (झिझीफस् सटाइवा); Z. vulgaris Lam. (झि० वल्गेरिस्)। Fam. Rhamnaceae (हॅम्नेसी)।

यह पंजाब, हिमालय में ६५०० फीट तक, पूर्व में बङ्गाल तक, उत्तरपश्चिम सीमांत प्रदेश तथा बलूचिस्तान में होता है। अधिकतर चीन, ईरान आदि देशों से यह आते हैं।

इसका **वृक्ष**–छोटा तथा कांटेदार होता है। **पत्ते**–अंडाकार या गोल होते हैं। **पुष्प**–सितम्बर के अन्त में छोटे हरिताभ श्वेत आते हैं। **फल**–लाल, बहुत झुर्रीदार, १ से १॥ इञ्च लंबा, १ इञ्च चौड़ा, बेर की तरह गोल रहता है जिसका गूदा गुठली से चिपका हुआ, मीठा, पीला तथा हलका होता है। गुठली लंबी, कड़ी तथा झुर्रीदार होती है।

इसके पत्तों को चबाने से सभी प्रकार के स्वाद का ज्ञान ५ से २० मिनट के लिये समाप्त हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें शर्करा तथा लबाब रहता है।

गुण और प्रयोग—यह मधुर, स्नेहन तथा कफशामक है। छाल ग्राही, व्रणरोपण तथा व्रणशोधन है।

(१) इसका शरबत खांसी में दिया जाता है। सूखी खांसी में उन्नाव, गोंद, चीनी तथा गुलाब पत्ती को पकाकर तैयार की गई गोली मुँह में रखकर चूसते हैं।

(२) पत्तों को पीसकर बिच्छू काटने पर बाँधते हैं।

(३) छाल का क्वाथ शीतज्वर में अतिसार तथा शिथिलता आने पर देते हैं। इससे व्रण प्रक्षालन भी किया जाता है। मात्रा—५ से ७ बेर।

२३ बेर (कोल, बदर)

हि०–बेर, बैर, बदर। **बं०**–कुल बेर। **म०**–बोर, बोरीचे झाड़। **गु०**–बोर। **ता०**–इलंदे। **ते०**–रेगु चेट्टु। **अ०**–सिदर नबक़। **अं०**–Plum (प्लम)। **ले०**–*Zizyphus jujuba Lam.* (झिझिफस् जुजुबा)। Fam. Rhamnaceae (हॅम्नेसी)।

बेर प्रायः सब प्रान्तों में होता है। यह जंगलों में आपही आप उत्पन्न होता है और बागों में रोपण किया जाता है।

इसका **वृक्ष**–मध्यमाकार का होता है और शाखायें बहुत होती हैं। वृक्ष और शाखायें छोटे-छोटे तीक्ष्ण कांटों से भरी रहती हैं। **पत्ते**–१–१॥ इञ्च के घेरे में गोलाई लिये लम्बे होते हैं। **फूल**–हरापन युक्त सफेद आते हैं। **फल**–संख्या में बहुत, अण्डाकार, पकने पर फीके पीले या नारंगी रंग के होते हैं। **गुठली**—कठोर होती है।

गुण और प्रयोग—इसके फल स्नेहन, रक्तस्तम्भक, पाचन, रक्तशोधन, हृद्य, उदर्द प्रशमन, श्रमहर एवं वातसंशमन हैं। इसके बीज हिक्का निग्रहण एवं नेत्र्य हैं। इसका पत्रलेप ज्वर एवं दाहनाशक है। इसकी छाल, विस्फोट शामक तथा अतिसार में लाभदायक है।

२४ झड़बेर (कर्कन्धू, क्षुद्रबदर)

हि०–झड़बेर, झरबेर, झड़बेरी। **पं०**–कोकनबेर। **म०**–जंगलीबोर। **गु०**–चणीआंबोर, चणीबोर। **ले०**–*Zizyphus nummularia W. & A.* (झिझीफस् न्युम्मूलेरिया)। Fam. Rhamnaceae (हॅम्नेसी)।

यह शुष्क भागों में प्रायः सभी जगह पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**–झाड़ के समान एक गज़ तक ऊँचा और शाखायें–सूक्ष्म कांटों से भरी हुई पतली-पतली भूमि की ओर नत रहती हैं। **पत्ते**–उक्त बेर के पत्तों के आकार के परन्तु उनसे छोटे होते हैं। **फल**–छोटे-छोटे उन्नाव के समान होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके फल शीतल ग्राही एवं पित्तशामक होते हैं। इसकी पत्तियाँ पामा तथा फोड़े पर लगाई जाती हैं।

अथ प्राचीनामलकम् (पानी आंवला)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

प्राचीनामलकं लोके पानीयामलकं स्मृतम्। प्राचीनामलकं दोषत्रयजिज्ज्वरघाति च ॥७८॥

पानी आँवला के संस्कृत नाम—प्राचीनामलक तथा पानीयामलक हैं। **पानी आँवला**–त्रिदोष तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है॥ ७८॥

२५ पानी आमला

हि०–पानी आमला, पानी आंवड़ (रा), पनियाला। **बं०**–पानिआमला। **म०**–पान आंवळा, तांबर। **गु०**–तालिसपत्र। **अं०**–Puneala plum (पनियाला प्लम्)। **ले०**–*Flacourtia cataphracta Roxb.* (फ्लाकोर्शिया कॅटाफ्रॅक्टा)। Fam. Flacourtiaceae (फ्लाकोर्शियेसी)।

यह बङ्गाल, आसाम, चट्टगांव, कोंकण आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**–छोटे कद का होता है और शाखाओं पर लंबे एवं बहुविभक्त कांटे होते हैं। **पत्ते**–२ से ५ इञ्च लम्बे, आयताकार या आयताकार-भालाकार, लम्बाग्र, चिकने एवं गोल या आरावत् दन्तुर होते हैं। **फूल**–बहुत छोटे २ बेर के समान होते हैं। **फल**–झरबेर के समान गोलाकार, व्यास में ·८–१ इंच, खानेलायक और पकने पर लाल हो जाते हैं। इसके फल में विशेष गंध रहती है। गुद्दी भूरापन लिये हरी तथा रसदार रहती है।

रासायनिक संगठन—बीजों में तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह पित्तशामक है। पित्तप्रकोप में इसको देते हैं। इससे वमन तथा विरेचन रुक जाता है। दंतशूल तथा मसूढे से खून आता हो तो इसके पत्ते तथा छाल के क्वाथ से कुल्ला कराते हैं।

अथ लवली (हरफारेवडी)। तस्या नामानि तत्फलगुणांश्चाह

सुगन्धमूला लवली पाण्डुः कोमलवल्कला ॥ ७९ ॥
लवलीफलमश्मार्शःकफपित्तहरं गुरु। विशदं रोचनं रूक्षं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥ ८० ॥

हरफारेवड़ी के संस्कृत नाम—सुगन्धमूला, लवली, पाण्डु तथा कोमलवल्कला ये सब हैं।

हरफारेवड़ी का फल—विशद गुणयुक्त, रोचक, रूक्ष, गुरु, स्वादिष्ट, अम्ल तथा कषाय रसयुक्त एवम्–पथरी, अर्श, कफ तथा पित्त को नष्ट करनेवाली होती है ॥ ७९-८० ॥

२६ हरफारेवड़ी

हि०–हरफारेवड़ी (री), लवली, हरफरौरी। बं०–नोयाल, हरफल। म०–रायआँवळ। गु०–खाटी आंवळ। ता०–अरिनेल्लि। ते०–राचयुसरिके। क०–करिनेल्लि। अं०–Star gooseberry (स्टार गूजबेरी), Country gooseberry (कन्ट्री गूजबेरी)। ले०—*Cicca acida* (*Linn.*) *Merrill* (सिक्का ॲसिडा); Syn. Phyllanthus distichus Muell. Skells (फाइलेन्थस् डिस्टिकस्)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

प्रायः यह सब प्रान्त की वाटिकाओं में लगाई हुई देखने में आती है।

इसका वृक्ष–मध्यमाकार का, २० फीट ऊँचा तथा सुहावना दिखाई पड़ता है। पत्ते–कसौंदी के पत्तों के आकार वाले, सींकों के दोनों ओर एकान्तर लगते हैं। देखने में ये यद्यपि पक्षवत् सपत्रक मालूम होते हैं तथापि ये अपत्रक होते हैं। वसन्त ऋतु में इस पर फूल लगते हैं। फूल–बारीक गुलाबी रङ्ग के गुच्छों में मोटी मोटी डालियों पर आते हैं। फल–खट्टे, नतशीर्ष, गोल, सतह पर ८ से १० नालियों से युक्त एवं खानें लायक होते हैं। इसको कच्चा या पकाकर, खाते हैं तथा अचार, मुरब्बा आदि भी बनाते हैं। पत्तों का साग बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—फलों में ॲसेटिक ॲसिड होता है। मूल की छाल में टैनिन्, सॅपोनिन्, गॅलिक् ॲसिड तथा एक रवेदार पदार्थ होता है।

गुण और प्रयोग—फल अम्ल तथा ग्राही है। मूल तथा बीज विरेचक होते हैं। पत्ते तथा मूल का सर्पविष में प्रयोग किया जाता है। इसके मूल की छाल का रस विषैला रहता है तथा इससे सर में दर्द, सुस्ती, तीव्र उदर शूल तथा मृत्यु होती है।

अथ करमर्दः, करमर्दिका च (करौंदा–करौंदी)। तयोर्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणाँश्चाह

करमर्दः सुषेणः स्यात्कृष्णपाकफलस्तथा। तस्माल्लघुफला या तु सा ज्ञेया करमर्दिका ॥८१॥
करमर्दद्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषाहरम्। उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित् ॥ ८२ ॥

करौंदा के संस्कृत नाम—करमर्द, सुषेण तथा कृष्णपाकफल ये सब हैं। इसकी अपेक्षा छोटे फल जिसके हों उसे संस्कृत में 'करमर्दिका' कहते हैं।

दोनों प्रकार के करौंदे के कच्चे फल–अम्ल (खट्टे), पाक में गुरु, तृष्णानाशक, उष्ण, रुचिजनक तथा रक्तपित्त और कफ के वर्धक होते हैं। पके फल–मीठे, रुचिजनक, लघु, एवम्–पित्त तथा वायु के नाशक होते हैं ॥ ८१–८२ ॥

२७ करौंदा

हि०–करौंदा, करौंदा। बं०–करमचा। म०–करवंद। गु०–करमदां। क०–करिजिगे। ते०–वाका, करवन्दे। ता०–कलक्के। ले०–*Carissa carandas Linn.* (केरिसा कॅरण्डस्)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

यह प्रायः बाग-बगीचों में रोपण किया जाता है तथा सभी भागों में होता है।

इसका वृक्ष–छोटा, झाड़दार और सदा हरा भरा रहता है। इस पर तीक्ष्ण युग्म कांटे होते हैं। पत्ते–१॥–२ इञ्च लम्बे, १–१॥ इञ्च चौड़े नीबू के पत्तों के समान होते हैं। फूल–सफेद रङ्ग के आते हैं और उनसे सुगन्ध आती है। फल–झरबेर के आकारवाले, ½–१ इञ्च लम्बे, काले या सफेदी युक्त लाल रङ्ग के होते हैं। इनका स्वाद अत्यन्त खट्टा होता है। इसकी अन्य दो तीन जातियाँ होती हैं जिनमें से एक दक्षिण को तरफ होती है जिसमें फल बड़े होते हैं तथा अन्य छोटे फल वाली सभी स्थानों पर होती है जिसे मूल में करमर्दिका कहा गया है।

गुण और प्रयोग—इसके फल, मूल तथा पत्तों का उपयोग किया जाता है। यह शीतल, रक्तपित्तशामक एवं हृद्य है। यह प्रशीताद नामक मसूड़े के रोग में जिसमें मसूड़े से खून आता है, लाभदायक है।

इसकी जड़ कटु, तिक्त, वामक एवं मूत्रजनन है। इसका उपयोग सर्प ने काटा है या नहीं इसकी परीक्षा के लिये करते हैं। इसको शीत जल में घिसकर पिलाते हैं। यदि सांपने काटा है तो वमन नहीं होता। नींबू के रस में कपूर के साथ इसे घिसकर बच्चों को होने वाले सफेद पानीदार फोड़ों पर लेप करते हैं। विषमज्वर में पत्तों का क्वाथ पिलाते हैं।

अथ प्रियालः (चिरौंजी)। तस्य नामानि तत्फलस्य च गुणाँश्चाह

प्रियालस्तु खरस्कन्धश्चारो बहुलवल्कलः। राजादनस्तापसेष्टः सन्नकद्रुर्धनुष्पटः ॥८३॥
चारः पित्तकफास्रघ्नस्तत्फलं मधुरं गुरु। स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदाहज्वरतृषाऽपहम् ॥८४॥

चिरौंजी के संस्कृत नाम—प्रियाल, खरस्कन्ध, चार, बहुलवल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सन्नकद्रु और धनुष्पट ये सब हैं।

चिरौंजी–पित्त, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है। चिरौंजी के फल–मधुर, गुरु, स्निग्ध, मल–सारक एवम्–वात, पित्त, दाह, ज्वर तथा तृषा को दूर करने वाले होते हैं ॥

अथ तन्मज्जगुणानाह

प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः। हृद्योऽतिदुर्जरः स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः ॥

चिरौंजी की मींगी—मधुर रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), हृदय को हितकर, अत्यन्त देर में पचने वाली, स्निग्ध, मल का विष्टम्भ करने वाली, आम को बढ़ानेवाली तथा पित्त और वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥ ८५ ॥

२८ चिरौंजी

हि०–चिरोंजी, चिरौंजी। बं०–चिरौंजी, पियाल। म०, गु०–चारोळी। क०–चारबीज, नरकल। ते०–सारुपपु। ता०–मुडइमा। फा०–नुकले खाजा, नुकुलखवाजह। अ०–हब्बुस्समाना,

हब्बुल समनह। ले०-*Buchanania latifolia Roxb.* (बुचनॅनिया लेटिफोलिया)। Fam. Anacardiaceae (अॅनेकार्डिएसी)।

यह इस देश के गरम और सूखे प्रान्तों में अधिक पाई जाती है।

चिरौंजी का वृक्ष मध्यमाकार का होता है। कहीं कहीं ५० फीट तक ऊँचा वृक्ष देखा जाता है। छाल-मोटी, गहरे धूसर वर्ण की एवं चौकोर आकार में फटी हुई होने से मगर के चमड़े की तरह दिखलाई देती है। पत्ते-कड़े, अखण्ड, आयताकार या लट्वाकार-आयताकार एवं ६-१० इञ्च लंबे होते हैं। फूल-श्वेत एवं मञ्जरियों में चौथाई इञ्च के घेरे में गोलाकार होते हैं। फल-लम्बाई युक्त गोलाकार दबे हुए, ½ इञ्च व्यास के, एक बीजयुक्त तथा काले रंग के होते हैं। फल तथा उसके भीतर की मज्जा जिसे चिरौंजी कहते हैं खाई जाती है। इसके वृक्ष से गोंद भी निकलता है।

रासायनिक संगठन—मज्जा में ५१·८% तेल, २१·६% प्रोटिन तथा ५% शर्करा होती है। तेल हलके पीले रंग का, सुगंधित तथा बादाम या जैतून के तेल सदृश होता है। छाल में टैनिन होता है।

गुण और प्रयोग—चिरौंजी बहुत अच्छी पौष्टिक एवं बृंहण है। इसको बादाम के स्थान पर उपयोग में ला सकते हैं। इसकी पेया खांसी में दी जाती है। बालों को काला बनाने के लिये तेल का उपयोग करते हैं। त्वचा के रोगों में इसका उबटन बनाकर लगाते हैं।

गोंद का उपयोग अतिसार में करते हैं।

अथ राजादनः (खिरनी)। तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या क्षीरिकाऽपि च ॥ ८६ ॥
क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु। तृष्णामूर्च्छामदभ्रान्तिक्षयदोषत्रयास्रजित् ॥

खिरनी के संस्कृत नाम—राजादन, फलाध्यक्ष, राजन्या तथा क्षीरिका ये सब हैं।

खिरनी के फल—वृष्य, बलकारक, स्निग्ध, शीतल, गुरु एवम्—तृषा, मूर्च्छा, मद, भ्रान्ति, क्षय, त्रिदोष तथा रक्तविकार को दूर करने वाले होते हैं ॥ ८६-८७ ॥

२९ खिरनी

हि०—खिरनी, खिर्नी, खिन्नी। **बं०**—क्षीर खेजूर, **म०**—खिरणी, रांजण। **गु०**—रायण काकडिया। **क०**—खिरणी मारा। **ता०**—पल, पले। **ते०**—पालमानु। **ले०**—*Mimusops hexandra Roxb.* (माइमुसोप्स हेक्सॅड्रा)। Fam. Sapotaceae (सॅपोटेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पायी जाती है। विशेषकर दक्खन से गुजरात तक और बान्दा में अधिक मिलती है।

इसके वृक्ष कहीं बड़े और कहीं छोटे दिखाई पड़ते हैं। पत्ते-२-४ इञ्च लम्बे, १-२॥ इञ्च चौड़े अण्डाकार होते हैं और वे टहनियों के अन्त में सघन रहते हैं। फूल-चक्राकार, छोटे-छोटे सफेद या फीके पीले रङ्ग के आते हैं। फल-आध इञ्च तक लम्बे, चिपटे और पकने पर पीले हो जाते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी होती है। इसके फल खाये जाते हैं। छाल तथा बीज तैल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में फल शर्करा ७०% होती है। बीजों में तेल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—छाल संग्राही है एवं तेल बल्य तथा स्नेहन होता है। छाल का प्रयोग बकुल की छाल की तरह किया जाता है।

अथ विकङ्कतः (कण्टाई)। तस्य नामानि तत्पक्वफलगुणाँश्चाह

विकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टकः। स एव यज्ञवृक्षश्च कण्टकी व्याघ्रपादपि ॥
विकङ्कतफलं पक्वं मधुरं सर्वदोषजित् ॥ ८८ ॥

कण्टाई के संस्कृत नाम—विकङ्कत, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल, स्वादुकण्टक, यज्ञवृक्ष, कण्टकी तथा व्याघ्रपाद् ये सब हैं। **कण्टाई के फल**—यदि पके हों तो वे मधुर रसयुक्त सभी दोषों को दूर करने वाले होते हैं ॥ ८८ ॥

३० विकंकत (कंटाई)

हि०—कंटाई, बिलंगरा, कंजू। **बं०**—बइंचि गाछ, बैंची,। **म०**—बेहकल काकेर। **गु०**—कांकोड। **क०**—हलुमाणिका। **ते०**—कानरेगु चेट्टु। **ता०**—सोट्टै कला। **अं०**—Governor's Plum (गवर्नर्स प्लम)। **ले०**—*Flacourtia ramontchi L' Herit* (फ्लेकोर्शिया रामोंशी)। Fam. Flacourtiacese (फ्लेकोर्शियेसी)।

यह हिमालय, बिहार, मध्यभारत, दक्खन, कोंकण आदि प्रदेशों में उत्पन्न होता है।

इसका वृक्ष छोटा होता है। शाखाओं पर काँटे रहते हैं। पत्ते-विभिन्न आकार के, चमकीले, प्रायः ४ इञ्च से कम लंबे, वृत्ताकार या आयताकार-अभिलट्वाकार, कुंठिताग्र एवं गोल या आरावत् दन्तुर होते हैं। फूल-पीताभ हरित और बारीक होते हैं। फल-आध इञ्च के घेरे में गोलाकार, गूदेदार, चिकने और पकने पर गहरे बैंगनी या लाल हो जाते हैं। बीज-अनेक तथा छोटे २ होते हैं। इसके कई भेद पाये जाते हैं। फलों का स्वाद तीक्ष्ण किंतु मधुर होता है तथा गंध भी अच्छी होती है।

गुण और प्रयोग—फल दीपन एवं पाचन होते हैं। कामला एवं प्लीहा वृद्धि में फल देते हैं। छाल कषाय एवं मूत्रल होती है।

अथ पद्माक्षम् (कमलगट्टा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पद्मबीजं तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी। पद्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकं गुरु ॥ ८९ ॥
विष्टम्भि वृष्यं रूक्षञ्च गर्भसंस्थापकं परम्। कफवातकरं बल्यं ग्राहि पित्तास्रदाहनुत् ॥ ९० ॥

कमलगट्टा के संस्कृत नाम—पद्मबीज, पद्माक्ष, गालोड्य, तथा पद्मकर्कटी ये सब हैं। **कमलगट्टा**—स्वादिष्ट, कषाय तथा तिक्तरसयुक्त, शीतल, गुरु, विष्टम्भक, वृष्य (वीर्यवर्धक), रूक्ष, गर्भ को विशेषतः स्थापित करनेवाला, कफ तथा वातजनक, बलदायक, ग्राही एवम् पित्त, रक्तविकार या रक्तपित्त और दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ८९-९० ॥

३१ कमलगट्टा

हि०—कमलगट्टा, कमल के बीज। **बं०** पद्म बीचि। **म०**—कमलाक्ष, कमळाचे बीज। **गु०**-कमल काकड़ी, पबड़ी। **क०**—तावड़े बीज, पद्माक्ष। **ते०**-तामरकाय, तामरकाई। **यू०**—गुलहार। **अ०**—बालके कुवति।

कमल के बीजों को कमलगट्टा कहते हैं। यह रीठे की गुठली के समान परन्तु लम्बाई युक्त गोल तथा चिकना होता है और कमलकोष के भीतर से निकलता है। छिलका-कठोर होता है और गिरी सफेद होती है। गिरी के बीच में हरे रङ्ग की पत्ती रहती है। उसको निकाल कर व्यवहार में लाना चाहिये।

नोट—अन्य वर्णन कमल के साथ (पृष्ठ ४८०) किया गया है।

अथ मखान्नम् (मखाना)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मखान्नं पद्मबीजाभं पानीयफलमित्यपि। मखान्नं पद्मबीजस्य गुणैस्तुल्यं विनिर्दिशेत् ॥९१॥

मखाना के संस्कृत नाम—मखान्न, पद्मबीजाभ तथा पानीयफल ये सब हैं।

मखाना—गुणों में कमलगट्टा के समान ही समझना चाहिये ॥ ९१ ॥

३२ मखाना

हि०-मखाना, मखान्ना। **बं०**-माखाना। **गु०**-मखाणा। **म०**-मखाणे, मकाणे। **तै०**-मेल्लुनिपदमसु। **प०**-जवेर। **अं०**-Fox nut (फॉक्स नट), Gorgon fruit (जार्गन फ्रूट)। **ले०**-*Euryale ferox Salisb.* (युरीएल फेरॉक्स)। Fam. Nymphaeaceae (निम्फिएसी)।

यह उत्तर, मध्य तथा पश्चिम भारत के स्वच्छ पानी के तालाबों तथा झीलों में होता है।

इसका क्षुप-काण्डहीन, काँटेदार तथा कमल के समान जल में होता है। पत्ते-कमल के समान, तैरते हुये, गोलाकार, १ से ४ फीट व्यास में, ऊपर से हरे किन्तु नीचे से लाल या बैंगनी, मृदुरोमश एवं शिराओं पर काँटों से युक्त होते हैं फूल-१ २ इञ्च लम्बे, भीतर की ओर लाल चमकीले और बाहर से हरे रङ्ग के होते हैं। फल-दो से चार इञ्च के घेरे में गोलाकार एवं काँटेदार होते हैं। बीज-मटर या मटर से कुछ बड़े होते हैं। यह संख्या में ८ से २० एवं काले रहते हैं। इन्हें कच्चे या भूनकर खाते हैं। बालू में भूनने से ये फूल जाते हैं जिन्हें मखाना कहा जाता है। इसका आटा अरारूट के समान होता है।

रासायनिक संगठन—सौ भाग मखाने में प्रोटीन ९.७, आर्द्रता १२.८, कार्बोहाइड्रेट ७६.९, स्नेह ०.१; लौह १.४ मि० ग्रा० १०० ग्राम में, एवं अल्प खटिक, फॉस्फोरस तथा कॅरोटीन आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—मखाना बल्य, वाजीकर एवं ग्राही है। इसको प्रसवान्त दौर्बल्य, शुक्रस्राव एवं वीर्याल्पता में दूध में पकाकर खिलाते हैं। यह सुपाच्य होता है तथा आहार के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है।

अथ शृङ्गाटकम् (सिंघाड़ा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

शृङ्गाटकं जलफलं त्रिकोणफलमित्यपि ॥ ९२ ॥
शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम्। ग्राही शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं पित्तास्रदाहनुत् ॥९३॥

सिंघाड़ा के संस्कृत नाम—शृङ्गाटक, जलफल तथा त्रिकोणफल ये सब हैं।

सिंघाड़ा—स्वादिष्ट तथा कषायरसयुक्त, शीतल, गुरु, वृष्य (वीर्यवर्धक), ग्राही, शुक्र, वात तथा कफजनक एवम्-पित्त, रक्तविकार और दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ९२-९३ ॥

३३ सिंघाड़ा

हि०-सिंघाड़ा(रा) सिंहाड़ा(रा)। **बं०**-पानिफल, सिंगाड़े। **म०**-शिंघाड़े, शेंगाडा। **गु०**-शींघोड़ा। **क०**-सिंगाड़े। **तै०**-परिकिगड्डु। **अं०**-Water caltrops (वाटर कॅलट्रॉप्स्); Water Chestnut (वाटर चेस्टनट)। **ले०**-*Trapa bispinosa Roxb.* (ट्रॅपा बाइस्पाइनोसा)। Fam. Onagraceae (ओनेग्रेसी)।

सिंघाड़ा—प्रसिद्ध पानीय फल अनेक प्रान्तों के बड़े छोटे ताल तलैयों में उत्पन्न होता है। इसका जलीय क्षुप-जलकुम्भी के समान पानी के ऊपर फैला रहता है। पत्ते-जलकुम्भी के

समान होते हैं परन्तु वे त्रिकोणाकार होते हैं। फूल-सफेद आते हैं जो शाम को फूलते हैं। फल-तिधारे होते हैं और उनके ऊपर २ काँटे होते हैं जो देखने में बैल के सिर की तरह दिखलाई देते हैं। छिलका-मोटा होता है और गुदी सफेद होती है। फल को उबाल कर या कच्चा ही छिलका निकाल कर आहार के रूप में खाया जाता है। काश्मीर में एक बिना काँटे की जाति पाई जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें मॅंगनीज तथा स्टार्च होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, पौष्टिक, वृष्य, शोणितास्थापन ग्राही, दीपन, दाहहर एवं श्रमहर है।

इसकी पेया अतिसार, आँव एवं प्रदर में दी जाती है। पित्त प्रकृति वालों को तथा गर्भिणी को इससे लाभ होता है।

अथ कैरविणीफलम् (भेंट) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

उक्तं कुमुदबीजन्तु बुधैः कैरविणीफलम्। भवेत्कुमुद्वतीबीजं स्वादु रूक्षं हिमं गुरु ॥ ९४ ॥

कुमुदनी बीज के संस्कृत नाम—कुमुद्वतीबीज, कैरविणीफल तथा कुमुदबीज ये सब विद्वानों ने बताये हैं।

कुमुदनी के बीज—स्वादिष्ट, रूक्ष, शीतल तथा पाकमें गुरु होते हैं ॥ ९४ ॥

३४ कैरविणीफल (बेरा)

हि०-बेरी, कुमुद के बीज, कुमुदबीज, बेरा, घंघोल के दाने, भटबेरा, भेटबेरा। **बं०**-हेलाबीज, सुन्दी बीज। **गु०**-पोयणानाबीज। **फा०**-तुख्म नीलोफर। **अ०**-करनबुल् माय।

कुमुद फूल के बीज को कैरविणीफल कहते हैं। इसके संबंध में अन्य वर्णन पुष्पवर्ग में कुमुद के अन्तर्गत (पृष्ठ ४८४) किया जा चुका है।

अथ मधूकः (महुआ, बनमहुआ)।
तस्य नामानि तत्पुष्पफलगुणाँश्चाह

मधूको गुडपुष्पः स्यान्मधुपुष्पो मधुस्रवः। वानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेऽत्र मधूलकः ॥९५॥
मधूकपुष्पं मधुरं शीतलं गुरु बृंहणम्। बलशुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्तविनाशनम् ॥ ९६ ॥
फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत्। अहृद्यं हन्ति तृष्णाऽस्रदाहश्वासक्षतक्षयान् ॥९७॥

महुआ के संस्कृत नाम—मधूक, गुडपुष्प, मधुपुष्प, मधुस्रव, वानप्रस्थ तथा मधुष्ठील ये सब हैं। जो महुआ जल में होता है उसे "मधूलक" कहते हैं।

महुवे के फूल—मधुर, शीतल, गुरु, बृंहण (रसरक्तादि-वर्धक), बल तथा शुक्रजनक एवम्-वात और पित्त को दूर करने वाले होते हैं।

महुवे के फल—स्वादिष्ट, शीतल, गुरु, शुक्रजनक, हृदय के लिए अहितकर, वात तथा पित्त को दूर करने वाले एवम्-तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत तथा क्षय नाशक हैं ॥ ९५-९७ ॥

३५ महुआ

हि०-महुआ, महुया, महुवा। **बं०**-मौल, मउल। **म०**-मोहड। **गु०**-महुडो। **क०**-इप्पेमरा। **तै०**-इपा, पिन्ना, इप्प। **ता०**-कट्टइल्लुपि। **फा०**-गुलचकां। **ले०**-*Bassia latifolia Roxb.* (बेसिया लॅटिफोलिया)। Fam. Sapotaceae (सॅपोटेसी)।

यह बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, मध्यभारत, दक्षिण आदि प्रान्तों में लगाया हुवा पाया जाता है और कुमाऊँ की तराइयों में आप ही आप जंगली उत्पन्न होता है।

इसका **वृक्ष**-बड़ा हुआ करता है और सदा हरामरा रहता है। **पत्ते**-५ से ९ इंच तक लम्बे, चर्मवत्, दीर्घवृत्ताभ, या आयताकार-दीर्घवृत्ताभ, किंचित् लम्बाग्र, आकार गोल या संकुचित, १० से १४ शिराओं से युक्त टहनियों के अन्त में एक साथ गुच्छों में रहते हैं। **फूल**-सफेद रङ्ग के गूदेदार छोटी २ शाखाओं के अन्त में गुच्छों में आते हैं और वे सूखने पर दाख के समान हो जाते हैं। **फल**-१ से २ इञ्च लंबे, अण्डाकार, नुकीले, गूदेदार तथा हरिताभ पीत रङ्ग के होते हैं। **बीज**-किञ्चित् लाली युक्त बीज होते हैं। उनके भीतर सफेद गूदी होती है। गूदी से तेल निकाला जाता है। रसदार फूलों (Corollas-अन्तर्दल) को आटे में मिलाकर रोटी बनाकर गरीब लोग खाते हैं। इसके तेल का उपयोग किया जाता है। इसके फूलों से मद्य बनाया जाता है। थोड़ा सा तैयार मद्य फूलों में रहता है जिससे इनको खाने से कुछ नशा हो जाता है। इसका मद्य स्वाद में तेलिया, कषाय एवं धूएँ जैसा दुर्गन्धी रहता है जो रखने से कुछ सुधरता है।

रासायनिक संगठन—इसमें सॅपोनिन तथा अन्य क्षाराभ होता है।

गुण और प्रयोग—इसका नया मद्य अहितकारक होता है तथा इससे आमाशय में दाह, अनिद्रा, शिरःशूल, बेचैनी एवं मानसिक विकार होते हैं। पुराना मद्य काम में लाया जा सकता है। इसके फूल शीत, बल्य, पौष्टिक एवं स्नेहन होने के कारण इनका क्वाथ ज्वर एवं कास में देते हैं। अंडशोथ में फूलों से सेकते हैं। इनको घी में भूनकर अर्शवालों को देते हैं। इसकी छाल का खुजली और सन्धिवात में उपयोग किया जाता है। तैल वातनाशक होता है।

३६ जलमहुआ

हि०-जलमहुआ। **बं०**-जल मउल। **म०**-जलमोहा। **क०**-नीरे हप्पे। **ते०**-पिन्ना। **गु०**-जलमहुडो। **क०**-जल महे। **ता०**-इलुपि। **ले०**-*Bassia longifolia Linn.* (बेसिया लॉंगीफोलिया)। Fam. Sapotaceae (सॅपोटेसी)।

जलमहुआ—नदी नालों के किनारे या आर्द्र जङ्गलों में उत्पन्न होता है। यह दक्षिण में अधिक होता है। इसके वृक्ष पत्ते आदि महुवे के समान होते हैं पर उनसे छोटे होते हैं।

नोट—उपर्युक्त वृक्ष के गुण धर्म महुवे के सदृश ही होते हैं। इसे भावप्रकाश में जल में होने वाला लिखा है किन्तु यह जल के अन्दर नहीं होता।

अथ परूषकम् (फालसा)। तस्य नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

परूषकं तु परुषमल्पास्थि च परापरम्। परूषकं कषायाम्लमामं पित्तकरं लघु ॥ ९८ ॥
तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम्। हृद्यन्तु पित्तदाहास्रज्वरक्षयसमीरहृत् ॥ ९९॥

फालसा के संस्कृत नाम—परूषक, परुष, अल्पास्थि तथा परापर ये सब हैं।

फालसा के कच्चे फल—कषाय तथा अम्ल रसयुक्त, पित्तकारक तथा लघु होते हैं। **पके फल**—विपाक में मधुर रसयुक्त, शीतल, विष्टम्भक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), हृदय के लिए हितकर एवम् पित्त, दाह, रक्तविकार, ज्वर, क्षय तथा वात को दूर करने वाले होते हैं ॥ ९८-९९ ॥

३७ फालसा

हि०-फालसा। **बं०**-फलसा। **म०**-फालसा। **क०**-बेट्टहा, दागल। **ते०**-चिट्टित। **गु०**-फालसा। **फा०**-फालसा, पालसह। **अ०**-फालसह। **ले०**-*Grewia asiatica Linn.* (ग्रिविया एशियाटिका)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

इसको अनेक प्रान्तों के लोग बागों में रोपण करते हैं। इसकी अन्य जातियों को भी फालसा कहा जाता है।

इसका **वृक्ष**-छोटा होता है। **पत्ते**-४-५ इञ्च लम्बे, २-२॥ इञ्च चौड़े गोलाकार एवं दंतुर होते हैं। दन्त अनियमित होते हैं तथा आधार की तरफ कुछ तिरछे होते हैं। **फूल**-झूमकों में पीले रंग के आते हैं। **फल**-मटर के समान गोल, कच्ची अवस्था में हरे रङ्ग के और पकने पर जामुनी रङ्ग के हो जाते हैं। इसका स्वाद खट्टा तथा कुछ मधुर होता है। इसका शरबत बनाकर लोग गरमी के दिनों में पीते हैं।

रासायनिक संगठन—फल में साइट्रिक अम्ल, शर्करा तथा अल्प विटामिन 'सी' होता है।

गुण और प्रयोग - इसके पके फल शीत, विष्टम्भि, पित्तशामक, हृद्य एवं तृष्णाशामक हैं।

(१) इनका उपयोग हृद्रोग, पित्तप्रकोप, ज्वर एवं दाह आदि में शरबत बनाकर करते हैं।

(२) इसके मूल की छाल आमवात में लाभप्रद मानी जाती है।

(३) पत्तों को पूय युक्त फुन्सियों पर लगाते हैं। इसके पत्तों के ईथरीय सत्व में पूयजनक जीवाणु (Staphylococcus aureus and Escherichia coli-स्टॅफिलोकोकस ऑरिअस् एवं एस्चेरिचिया कोलाई) नाशक शक्ति पाई गई है।

(४) इसकी अन्तर्छाल को जल में भिगोकर, मसलकर, छानकर पीने से मधुमेह में लाभ होता है।

अथ तूतः (सहतूत)। तस्य नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

तूतस्तूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्मदारु च। तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तानिलापहम् ॥
तदेवामं गुरु सरमम्लोष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ १०० ॥

सहतूत के संस्कृत नाम—तूत, तूल, पूग, क्रमुक तथा ब्रह्मदारु ये सब हैं।

सहतूत के पके फल—स्वादिष्ट, गुरु, शीतल एवम्-पित्त तथा वात के नाशक होते हैं।

यदि कच्चे फल हों तो वे-अम्ल रसयुक्त, उष्ण, पाक में गुरु एवम्-रक्तपित्त को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ १०० ॥

३८ तूत

हि०-सहतूत, तूत। शाहतूत। **बं०**-तूँत। **म०**-तूते। **गु०**-शेतूर। **ते०**-पुतिका। **ता०**-कम्बली। **फा०**-शाहतूत, तूततुर्श। **अ०**-तूत, तूद शामीज। **अं०**-Mulberry (मलबेरी)। **ले०**-*Morus indica Griff.* (मोरस् इण्डिका)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

तूत—आसाम, बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों में उत्पन्न होता है तथा बागों में लगाया भी जाता है।

इसका **वृक्ष**-मध्यमाकार का होता है। **पत्ते**-२ से ५ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौड़े, अंडाकार, अञ्जीर के पत्तों के समान कटे हुए होते हैं। **फूल**-मंजरियों में आते हैं।

तूत की दो-तीन जातियां होती हैं जिनके पत्ते आदि एक समान होते हैं। इसके पत्ते को रेशम के कीड़े बड़े चाव से खाते हैं। इसलिए रेशम के कीड़े पालने वाले प्रायः इसका वृक्ष रोपण कर रखते हैं।

इनमें से एक के फल पीताभ श्वेत एवं मीठे तथा दूसरे के मधुराम्ल एवं रक्ताभ कृष्ण होते हैं। वन्य तथा ग्राम्य भेद से भी इसके भेद होते हैं।

इसकी एक जाति मो० लिविगेटा (M. laevigata Wall.) सिक्किम की तराई में प्रायः वन्य अवस्था में मिलती है जिसका नेपाली नाम किमू या किम्बू होता है। तूत के पर्याय में क्रमुक आया है और क्रमुक से लोग पूग (सुपाड़ी) का ग्रहण करते हैं किन्तु चरकोक्त चार त्वगासवयोनि वृक्षों में क्रमुक के स्थान पर पूग का ग्रहण उचित नहीं जान पड़ता। वहाँ तो क्रमुक से कोई ऐसी छाल अभिप्रेत है जिसमें अन्य द्रव्यों के समान रेचन गुण हो। इन आधारों पर श्री ठा० बलवन्तसिंहजी ने चरकोक्त त्वगासवयोनि वृक्षों में के क्रमुक को पूग न मानकर इस तूद के भेद को माना है। (बिहार की वनस्पतियाँ, पृष्ठ १२३)।

गुण और प्रयोग—इसका रस दाहशामक, पिपासाहर एवं कुछ कफघ्न है। इसका ज्वर में प्रयोग करते हैं। इसकी छाल कृमिघ्न तथा विरेचक होती है। इसके पत्तों के क्वाथ से स्वरभंग में गण्डूष कराते हैं। इसकी जड़ कृमिघ्न तथा ग्राही होती है।

मात्रा—त्वक्क्वाथ ५ से १० तोला; फलस्वरस १ से ५ तोला।

अथ दाडिमः (अनार)। तस्य नामानि तत्फलभेदाँश्चाह

दाडिमः करको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः। तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् ॥

अनार के संस्कृत नाम—दाडिम, करक, दन्तबीज तथा लोहितपुष्पक ये सब हैं।

फल के भेद—अनार के फल स्वाद में तीन प्रकार के होते हैं। (१) कोई मधुर रसयुक्त, (२) कोई मधुर तथा अम्ल रसयुक्त (३) और कोई केवल अम्ल ही होते हैं ॥ १०१ ॥

अथ तत्फलभेदानां गुणानाह

तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम्। हृत्कण्ठमुखगन्धघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु ॥ १०२ ॥
कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलावहम् ॥ १०३ ॥
स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्तकरं लघु। अम्लन्तु पित्तजनकमामं वातकफापहम् ॥१०४॥

मीठे अनार—आरम्भ में मीठे अन्त में कसैले, सन्तर्पण करने वाले, शुक्रजनक, लघु, ग्राही, स्निग्ध, मेधा तथा बलवर्धक एवम्—त्रिदोष, तृषा, दाह, ज्वर, हृदय तथा कण्ठ-सम्बन्धी रोग, और मुख के दुर्गन्ध को दूर करने वाले होते हैं।

कुछ मीठे कुछ खट्टे अनार—अग्निदीपक, रुचिजनक, लघु तथा किंचित पित्तकारक होते हैं। **खट्टे अनार**—अम्ल रसयुक्त, पित्तजनक एवम्—आम, वात तथा कफ के नाशक होते हैं ॥

३९ अनार

हि०—अनार, दाड़िम। **बं०**—दाड़िम, डालिम गाछ। **म०**—डाळिम्ब। **गु०**—दाड़म। **क०**—दालिम्ब। **ते०**—दालिम्बकाया। **ता०**—मादलै, मडलै, मडलम। **अं०**—Pomegranate (पोमेग्रेनेट)। **ले०**—*Punica granatum Linn.* (प्युनिका ग्रॅनेटम्)। Fam. Punicaceae (प्युनिकेसी)।

प्रायः सब प्रान्त की वाटिकाओं में अनार के वृक्ष लगाये जाते हैं। यह हिमालय में ३ से ६ हजार फीट तक तथा अफगानिस्तान एवं फारस में वन्य रूप में पाया जाता है। इसका वृक्ष छोटा अनेक शाखा प्रशाखा करके झाड़दार होता है। **पत्ते**—विपरीत या न्यूनाधिक विपरीत या समूहबद्ध, अत्यन्त सूक्ष्म पारभासक छींटों से युक्त, १–२॥ इञ्च लम्बे, आयताकार या अभिलट्वाकार, चिकने एवं आधार की तरफ छोटे वृन्त से युक्त रहते हैं। **फूल**—अत्यन्त लाल रङ्ग के होते हैं। **फल**—गोल और छिलका मोटा होता है। फलों में सफेदीयुक्त लाल अथवा गुलाबी रङ्ग के अगणित

नोकदार दाने होते हैं। सूखने पर यह अनारदाना कहलाता है। इसके संपूर्ण फल, जड़ या कांड की छाल, फल की छाल एवं स्वरस आदि का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—फल के छिलके में पीतरंजक पदार्थ एवं गॅलोटॅनिक अम्ल (Gallotannic acid 28%) रहता है। मूल की छाल में ०·५–०·९% तथा काण्डत्वक् में ०·५% क्षाराभ पाये जाते हैं जिनमें पेलेटीराइन (Pelletierine) मुख्य हैं। इनमें गॅलोटॅनिक अम्ल २२% होता है।

गुण और प्रयोग—अनार हृद्य, ग्राही, रोचक, रक्तशोधक एवं शीतल है। (१) इसकी छाल अत्यन्त ग्राही एवं कृमिघ्न होती है। यह विशेष रूप से स्फीत कृमि (Tape worm) में लाभदायक होती है। कृमि के लिए १ छटाक ताजी छाल को २० छटाक जल में उबाल कर, आधा शेष रहने पर, छानकर १, १ छटाक प्रत्येक आधे घंटे पर, ४ बार खाली पेट पिलावें तथा बाद में एरंडतैल दें। अतिसार तथा संग्रहणी में भी छाल का उपयोग किया जाता है। (२) फल का छिलका अत्यन्त ग्राही होने से, अतिसार प्रवाहिका में इसका क्वाथ पिलाते हैं। संपूर्ण फल को जरा भूनकर, कूटकर, रस निकाल उसका भी उपयोग इनमें करते हैं।

मात्रा—फल का छिलका, मूलत्वक् १ से २ माशा।

अथ बहुवारः (लिसोड़ा)। तस्य नामानि तत्पक्कापक्कफलस्य च गुणाँश्चाह

बहुवारस्तु शीतः स्यादुद्दालो बहुवारकः। शेलुः श्लेष्मातकश्चापि पिच्छिलो भूतवृक्षकः ॥
बहुवारो विषस्फोटव्रणवीसर्पकुष्ठनुत्। मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत् ॥ १०६ ॥
फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं पित्तकफास्रजित्। तत्पक्कं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥

लिसोड़ा के संस्कृत नाम—बहुवार, शीत, उद्दाल, बहुवारक, शेलु, श्लेष्मातक, पिच्छिल तथा भूतवृक्षक ये सब हैं।

लिसोड़ा—विष, विस्फोट, व्रण, वीसर्प, कुष्ठ, कफ तथा पित्त का नाश करने वाला, केशों के लिये हितकर एवम्—मधुर, कषाय तथा तिक्त रसयुक्त होता है।

लिसोड़ा के कच्चे फल—विष्टम्भक, रूक्ष तथा पित्त, कफ और रक्तविकार को दूर करनेवाले हैं। पके फल—मधुर, स्निग्ध, कफजनक, शीतल तथा गुरु होते हैं। ॥ १०५–१०७ ॥

४० लिसोड़ा

हि०—लिसोड़ा, लिसोरा, छोटा लसोरा। **बं०**—बहुवार। **म०**—भोंकर। **गु०**—गूंदा, गुंदा वड। **क०**—चल्ले कायि। **ते०**—चिन्न नक्केरू। **ता०**—नरिविली। **फा०**—सपिस्तां, सिपिस्तां। **अ०**—सपिस्तां दबक। **अं०**—(फलनाम) Sebestan (सेबेस्टान्)। **ले०**—*Cordia myxa Roxb.* (कॉर्डिया मिक्सा); C. dichotoma Forst. f. (कॉ० डाइकोटोमा)। Fam. Boraginaceae (बोरेजिनेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों के वन उपवनों में तथा लगाया हुआ पाया जाता है।

इसका वृक्ष—४०–५० फीट तक ऊँचा होता है। डालियाँ—टेढ़ी-मेढ़ी कुबड़ी सी होती हैं। पत्ते—२ से ४–५ इञ्च के घेरे में गोलाकार और शाखाओं पर विषमवर्ती लगते हैं। फल—०·५ से १ इञ्च बड़े, पीताभ भूरे एवं पकने पर गुलाबी या कुछ काले होते हैं जिनके भीतर बीच की गुठली के बाहर एक गाढ़ा, मधुर एवं पारदर्शक गूदा होता है। इसे लोग खाते हैं।

इसका एक भेद बड़ा लसोड़ा नाम का गुजरात, उत्तरी कनारा एवं दक्खिन में होता है जिसका लेटिन नाम कॉ. वालिशिआई (C. wallichii G. Don.) है। इसके फल कफनिःसारक, ग्राही तथा स्नेहन होते हैं।

एक अन्य भेद गोंदी नाम का होता है। इसका लेटिन नाम कॉ. रोथाई (C rothii Roem & Schult) है। इसका वृक्ष–छोटा; फल–अंडाकार १ से १·३ से. मी. बड़े, लंबाई में धारीदार, पकने पर पीत या रक्ताभ भूरे एवं खाने लायक होते हैं। यह पंजाब, सिंध, गुजरात, दक्खिन तथा लंका में होता है।

लिसोड़ा के फल, छाल, पत्र एवं बीजमज्जा का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—छाल में टॅनिन होता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल शीत, ग्राही, कृमिघ्न, विषघ्न, मूत्रल, स्नेहन एवं कफ-निःसारक हैं। इनके क्वाथ का उपयोग कफ ढीला करने के लिये, मूत्र की जलन कम करने के लिये तथा अतिसार में करते हैं।

छाल का उपयोग जीर्णज्वर एवं कुपचन में करते हैं। इसके बीज की मज्जा का लेप दद्रु में लाभदायक माना जाता है।

अथ कतकः (निर्मली)। तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

पयःप्रसादी कतकः कतकं तत्फलं च तत्। कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मलताकरम्॥
वातश्लेष्महरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु॥ १०८॥

निर्मली के संस्कृत नाम—पयःप्रसादी और कतक ये हैं। इसके फल को भी 'कतक' ही कहते हैं किन्तु यह नपुंसकलिङ्ग में होता है।

निर्मली के फल—मधुर तथा कषाय रस युक्त, नेत्रों के लिये हितकर, जल को निर्मल करने वाले, गुरु एवम्—वात तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं॥ १०८॥

४१ निर्मली

हि०–निर्मली। **बं०**–निर्मली। **म०**–निर्मळी। **गु०**–निर्मली, कतकफो। **क०**–चिल्लिकायि। **ता०**–तेतन कोट्टई। **ते०**–कतकमु। **ले०**–*Strychnos potatorum Linn.* (स्ट्रिकनोस पोटेटोरम)। Fam. Loganiaceae (लोगेनिएसी)।

इसका वृक्ष सोन नदी के किनारे, मध्यभारत तथा दक्षिण की ओर पाया जाता है। यह ४० फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते–प्रायः २॥ इञ्च लम्बे, एक इञ्च चौड़े अंडाकार होते हैं। फूल–सफेद रङ्ग के आते हैं और उनसे सुगन्ध आती है। फल–गोल, पकने पर काले रङ्ग के होते हैं। इसमें गोल कुछ चिपटे बीज होते हैं जो चिमड़े होते हैं।

गुण और प्रयोग—निर्मली के बीजों में विष नहीं रहता। इसका उपयोग जल साफ करने के लिये करते हैं। इसके बीजों को काटकर मिट्टी के घड़े के अन्दर रगड़ते हैं, फिर पानी भरते हैं। इससे पानी की गन्दगी नीचे बैठ जाती है।

नेत्राभिष्यन्द में बीजों को जल में घिस कर अञ्जन करते हैं।

सोजाक, मधुमेह तथा जीर्ण अतिसार में बीजों का उपयोग किया जाता है। जीर्ण अतिसार में आधा बीज मट्ठे में घिसकर पिलाते हैं।

अथ द्राक्षा (दाख)। तस्या नामानि तत्पक्वापक्वफलस्य तद्भेदानां च गुणाँश्चाह

द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसाऽपि च। मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्त्तिता॥
द्राक्षा पक्वा सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः। स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरा सृष्टमूत्रविट्॥
कोष्ठमारुतकृद् वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा॥ १११॥
हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवातवातास्रकामलाः। कृच्छ्रास्रपित्तसंमोहदाहशोषमदात्ययान्॥११२॥
आमा स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत्।
वृष्या स्याद् गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत्॥

दाख के संस्कृत नाम—द्राक्षा, स्वादुफला, मधुरसा, मृद्वीका, हारहूरा और गोस्तनी ये सब हैं।

दाख के पके फल—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में मधुर रसयुक्त, सारक, शीतल, नेत्रों के लिये हितकर, बृंहण, गुरु, स्वर को उत्तम करने वाले, मूत्र तथा मल की प्रवृत्ति कराने वाले, कोष्ठ में वातकारक, वृष्य, कफ-पुष्टि तथा रुचि के उत्पन्न करने वाले एवम्—तृषा, ज्वर, श्वास, वात, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मोह, दाह, शोष तथा मदात्यय रोग को दूर करने वाले होते हैं। **कच्चे दाख के फल**–पके की अपेक्षा अल्प गुण वाले एवम् गुरु होते हैं। वे ही यदि खट्टे हों तो रक्तपित्त कारक होते हैं।

गोस्तनी-दाख (मुनक्का)—वीर्यवर्धक, गुरु तथा कफ और पित्त का नाशक होती है॥

***गोस्तनी 'मुनक्का' इति लोके॥ १०९-११३॥**

यहाँ पर "मूल में गोस्तनी पद से मुनक्का का बोध लोक में होता है" ऐसा समझना चाहिये॥ १०९-११३॥

अबीजाऽन्या स्वल्पतरा गोस्तनीसदृशी गुणैः।
द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी साऽम्ला श्लेष्माम्लपित्तकृत्॥
द्राक्षा पर्वतजा यादृक् तादृशी करमर्दिका॥ ११४॥

दूसरी जाति की जो थोड़े बीजवाली दाख होती है वह—यद्यपि गुणों में मुनक्का के ही समान होती है तथापि उसमें अपेक्षाकृत स्वल्प गुण होते हैं।

पर्वत पर उत्पन्न होने वाली जो दाख है उसे "पर्वतजा" द्राक्षा कहते हैं। वह—पाक में लघु होती है। किन्तु यदि खट्टी हो तो वह—कफ तथा अम्लपित्त को उत्पन्न करने वाली होती है।

करमर्दिका के गुण—जिस भाँति "पर्वतजा" दाख के होते हैं वैसे ही इसके भी होते हैं॥११४॥

***अबीजा = ईषद्बीजा 'किसमिस' इति लोके। पर्वतजा = 'पहाड़ी' इति लोके। करमर्दिका = 'करौंदी' इति लोके॥ ११४॥**

यहाँ पर मूल में "अबीजा" पद से 'थोड़े बीज वाली" यह अर्थ समझना चाहिये इसी को लोक में "किसमिस" कहते हैं। "पर्वतजा" को पहाड़ीदाख" तथा "करमर्दिका" को लोक में "करौंदी" दाख कहते हैं॥ ११४॥

४२ दाख

हि०–दाख, मुनक्का, अंगूर। **बं०**–मनेका। **म०**–अंगूर, द्राक्ष। **गु०**–धराख, दराख। **क०**–द्राक्षे। **ते०**–द्राक्षा। **ता०**–कोट्टन। **फा०**–अंगूर, मवेज (सूखा)। **अ०**–इनुस् सजीव। **अं०**–Grapes (ग्रेप्स)। **ले०**–*Vitis vinifera Linn.* (विटिस् विनिफेरा)। Fam. Vitaceae (विटेसी)।

अंगूर, किसमिस, दाख, बड़ी दाख सब एक ही जाति की लताओं के फल हैं। कच्चे, पके, बीजहीन तथा छोटे, बड़े, सूखे आदि फलों के भेद से यह भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं।

यह लता जाति की वनस्पति फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान आदि विदेशों के सिवा इस देश में भी कई जगह किन्तु विशेषरूप से उत्तर पश्चिमी भागों में अधिक उत्पन्न होती है। पत्ते-गोलाकार, पांच दल तथा कटे किनारे वाले और कंगूरेदार होते हैं। फूल-हरे रङ्ग के सुगन्धित होते हैं। फूल तथा फल गुच्छों में आते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान और फारस आदि देशों के अंगूर अच्छे होते हैं। काश्मीर में किसमिस, मुनक्का, हौसानी और मस्का नामक कई जातियों के अंगूर उत्पन्न होते हैं। औरङ्गाबाद का अंगूर लाल और स्वादिष्ट होता है। दौलताबाद के अंगूर देश देशान्तरों में भेजे जाते हैं। सब जगह की जलवायु भिन्न होती है इस कारण प्रत्येक स्थान के फलों में कुछ न कुछ भेद होता है।

रासायनिक संगठन—पक्व फल में शर्करा, कुछ सेन्द्रीय अम्ल द्रव्य जैसे मॅलिक्, टार्टरिक्, रेसेमिक् अम्ल तथा आर्सेनिक् (१०० सी० सी० रस में ०·०५ मि० ग्रा०); कच्चे फल में आक्झेलिक् अम्ल एवं बीज में स्थिर तैल होता है। इससे आसव, अरिष्ट, सिरका, मॉन्डी आदि बनाई जाती है इसके फलों का अधिक उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—पक्व फल शीतल, संतर्पण, पाचन, स्रंसन, बल्य, कण्ठ्य, रक्तपित्त शामक है। सूखे फल शीतल, स्नेहन, कफ शामक, स्रंसन हैं। अपक्व फल का रस बहुत ग्राही होता है। गर्मी के दिनों में इसको काटने से एक रस बहता है जो त्वग्दोषहर है।

रक्तपित्त, पांडु दौर्बल्य आदि में अंगूर से काम होता है। ज्वर में इससे दाह एवं तृषा शांत होती है तथा मूत्र भी साफ होता है। मुनक्का का उपयोग खांसी, पेशाब की जलन, तथा शौच साफ होने के लिये करते हैं।

अथ क्षुद्रखजूरी–पिण्डखर्जूरी–छोहारा च। तासां नामानि गुणाँश्चाह

भूमिखर्जूरीका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा। तथा स्कन्धफला काककर्कटी स्वादुमस्तका ११५
पिण्डखर्जूरिका त्वन्या सा देशे पश्चिमे भवेत्। खर्जूरी गोस्तनाकारा परद्वीपादिहागता ॥११६॥
जायते पश्चिमे देशे सा छोहारेति कीर्त्यते। खर्जूरीत्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ ११७ ॥
स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरु। तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ॥ ११८ ॥
कोष्ठमारुतहृद् बल्यं वान्तिवातकफापहम्। ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णाकासश्वासनिवारकम् ११९
मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भूतगदान्तकृत्। महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्पखर्जूरिका स्मृता ॥१२०॥

खजूर के संस्कृत नाम—भूमिखर्जूरिका, स्वाद्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काककर्कटी तथा स्वादुमस्तका ये सब हैं। और दूसरी जाति का जो खजूर है वह पश्चिम (काबुल आदि) देशों में उत्पन्न होता है उसका संस्कृत नाम—पिण्डखर्जूरिका (हिन्दी नाम—पिण्डखजूर है)। एवम्–तीसरी जाति का जो खजूर है जो कि आकार में गौ के स्तन की भाँति होता है तथा दूसरे द्वीप से इस भारतवर्ष में आया है उसको लोग "छुहारा" कहते हैं। और वह भी पश्चिम के देशों में उत्पन्न होता है।

उक्त तीनों प्रकार के खजूर–रस में तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, शीतल, स्निग्ध, रुचिकर, हृदय को हितकर, गुरु, सन्तर्पणकारक, बलवर्धक एवम्–क्षत, क्षय, रक्तपित्त, कोष्ठस्थित–वायु, वमन, वात, कफ, ज्वर, अतिसार, भूख, प्यास, कास, श्वास, मद, मूर्च्छा, वातपित्त, मद्य से उत्पन्न रोग

को दूर करने वाले होते हैं। दोनों बड़े खजूर (पिण्डखजूर, छुहारा) से गुण में कम होने से खर्जूर को स्वल्पखर्जूरिका कहते हैं ॥ ११५–१२० ॥

अथ खर्जूरीतरुतोयगुणानाह

खर्जूरीतरुतोयं तु मदपित्तकरं भवेत्। वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् ॥ १२१ ॥

खजूर के वृक्षों के जल—रुचिकारक, अग्निदीपक, मद, पित्त, बल तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाले एवम्—वात तथा कफ के नाशक होते हैं ॥ १२१ ॥

अथ पिण्डखर्जूरीभेदः (सुलेमानी खजूर)। तस्य नामगुणानाह

सुलेमानी तु मृदुला दलहीनफला च सा। सुलेमानी श्रमभ्रान्तिदाहमूर्च्छाऽस्रपित्तहृत् ॥

सुलेमानी खजूर (यह "पिण्ड खजूर" का भेद है) के संस्कृत नाम—सुलेमानी, खर्जूरी, मृदुला तथा दलहीनफला ये सब हैं।

सुलेमानी खजूर–श्रम, भ्रान्ति, दाह, मूर्च्छा तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥१२२॥

४३ खर्जूरी–पिण्ड खर्जूरी (खजूर)

हि०–खजूर, देशी खजूर, खिजूर। बं०–खेजूर गाछ। म०–शिन्दी। क०–इचुली। ते०–इण्टाचेट्टु पेड्डयिता। गु०–खजूर। फा०–तमर रतब, खुरमाय हिन्दी। अ०–खुरमातर, रतब हिन्दी। अं०–Date (डेट)। ले०–*Phoenix sylvestris Roxb.* (फोनिक्स सिल्वेस्ट्रिस)। Fam. Palmae (पामी)।

देशी खजूर इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष–ताड़वृक्ष के समान होता है किन्तु इसकी ऊंचाई कम होती है। पत्ते–६ से ७ फीट लम्बे तथा पक्षाकार होते हैं। पत्रक–६ से १२ इञ्च लंबे, एक इञ्च चौड़े, तीक्ष्णाग्र, विपरीत एवं अग्र में एक पत्रक रहता है। पुष्प–एकलिंगी भिन्न-भिन्न वृक्षों पर आते हैं। कृत्रिम परागण की इसमें आवश्यकता होती है। फल–१ से १½ इञ्च लंबा, गोलाकार, पीत एवं पकने पर रक्ताभ रहता है। फल के अन्दर बीज रहता है। प्रायः पुष्प एवं फल काल के समय घोर वर्षा हुआ करती है जिसमें फल बनने में बहुत कठिनाई होती है।

इसके वृक्ष से जो रस निकलता है उसे खजूरी कहते हैं। इससे मद्य बनता है तथा गुड़ भी बनाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल बल्य एवं पौष्टिक होते हैं। इसके वृक्ष का रस शीतल मूत्रजनन तथा पौष्टिक पेय माना जाता है। इसकी जड़ दंतशूल में उपयोगी है। इसका मद्य दीपन, पाचन तथा उत्तेजक होता है। यह अन्य विदेशी मद्यों की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। इसकी शर्करा अधिक पौष्टिक तथा सारक है।

४४ छुहारा, ४५ पिण्ड खजूर

हि०–पिंडखजूर, छुहारा, छोहारा। बं०–सोहारा। म०–खारीक। गु०–खारेक। क०–इचुल, करिइंचुली, करिइंचुल। ते०–खजूरपुपण्डु। फा०–खुर्मा, खुर्मा खुश्क। अ०–तमर। अं०–Date Palm (डेट पाम)। ले०–*Phoenix dactylifera Linn* (फोनिक्स डॅक्टिलिफेरा)। Fam. Palmae (पामी)।

छुहारा—ईरान, फारस, काबुल आदि देशों में उत्पन्न होता है और इस देश के पंजाब सिन्ध प्रान्तों में रोपण किया जाता है।

इसके वृक्ष—ताड़ और नारियल के वृक्षों के समान होते हैं और **पत्ते**-खजूर के पत्तों के समान पर उनसे कुछ बड़े होते हैं। **फल**-भी खजूर से बड़ा होता है।

जिस प्रकार अंगूर, किसमिस, मुनक्के आदि एक ही जाति के लताओं के फल हैं और कच्चे, पके, बीजहीन, छोटे, बड़े, सूखे आदि फलों के भेद से वे भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं उसी प्रकार खजूर, छोहारा, पिण्डखजूर आदि एक ही जाति के वृक्षों के फल हैं। इस देश में होने से उसको देशी खजूर कहते हैं और वह गुण में हीन होता है। जिस प्रकार काबुल, फारस आदि देशों के अंगूर, अनार, नासपाती आदि फल इस देश में उत्पन्न हुये फलों की अपेक्षा सुस्वादु और वीर्यवर्द्धक होते हैं उसी प्रकार काबुल फारस प्रभृति देशों के खजूर सुस्वादु और अधिक गुणवान् होते हैं। अधपके सूखे फल को छुहारा और पके हुये फलों को पिण्ड खजूर या खजूर कहते हैं। इसके सिवा सुलेमानी खजूर, पिण्डखजूर का ही भेद है।

रासायनिक संगठन—फलों में विटामिन ए, बी, डी, तथा प्रशीताद (Scurvy-स्कर्वी) नाशक विटामिन होते हैं।

गुण और प्रयोग—खजूर शीतल, स्नेहन, वृष्य, तर्पण, गुरु, वातपित्तहर एवं कफनिःसारक है। इसका उपयोग क्षय, क्षतक्षय, कास, श्वास, दाह एवं रक्तपित्त में किया जाता है।

इसका गोंद अतिसार तथा मूत्रविकारों में लाभदायक है। इसके वृक्ष का रस शीतल तथा सारक होता है।

अथ वातादः (बादाम)। तस्य नामानि तन्मज्जगुणाँश्चाह

वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपमफलस्तथा। वातादः उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद् गुरुः।
वातादमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः।
स्निग्धोष्णः कफकृन्नेष्टो रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ १२४ ॥

बादाम के संस्कृत नाम—वाताद, वातवैरी तथा नेत्रोपमफल ये सब हैं।

बादाम—उष्ण, स्निग्ध, शुक्रकारक, गुरु एवम्-वातनाशक होता है।

बादाम की मींगी—मधुर, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, उष्ण, कफकारक एवम्-पित्त तथा वात को दूर करने वाली होती है तथा रक्तपित्त के रोगियों को हितकर नहीं होती है॥ १२३-१२४।

४६ बादाम

हि०—बादाम, बदाम। **बं०**—बादाम। **म०**—बदाम। **गु०**—बदाम। **ते०**—बदाम। **ता०**—वडुमै। **फा०**—बदाम। **अ०**—लौजल। **अं०**—Almond (ऑलमन्ड)। **ले०**—*Prunus amygdalus Batsch.* (प्रुनस् एमिग्डेलस्)। Fam. Rosaceae (रोसेसी)।

भारत के पंजाब एवं कश्मीर के शीतल प्रान्तों में इसकी उपज की जाती है। यह अफगानिस्तान, ईरान तथा युरोप में भी होता है।

इसका वृक्ष-मध्यमाकार का होता है। टहनियों के अन्त में पत्ते गुच्छों में रहते हैं। **पत्ते**-भालाकार और बारीक कंगूरेदार होते हैं। **फूल**-सफेद रङ्ग के आते हैं जिनपर लाल रङ्ग के धब्बे रहते हैं। **फल**-लम्बाई युक्त गोल होते हैं। **बीज**-अण्डाकार और चिपटे होते हैं। कच्चे फलों का कश्मीर में साग बनाकर खाते हैं। कच्चे फल खट्टे और पके फल खटमीठे होते हैं।

बादाम के दो प्रकार पाये जाते हैं। एक की मींगी मधुर तथा दूसरे की कड़वी होती है। बदाम की स्थान भेद से अनेक जातियाँ पाई जाती हैं। मीठा बादाम खाने के योग्य होता है। कड़वा अत्यन्त विषैला होता है।

रासायनिक संगठन—कड़वे बादाम में अत्यन्त विषैला तत्व हाइड्रोसायेनिक एसिड होता है। करीब ६० कड़वे बदाम में वयस्क मनुष्य के लिये घातक प्रमाण में विष होता है। यह विष उसके उड़नशील तैल में होता है।

मीठे बदाम में स्थिर तैल ३५-६२% होता है। यह विष इसमें यदि हो तो बहुत ही कम होता है।

गुण और प्रयोग—बदाम मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, बृंहण, बल्य, वातहर, वातनाड़ी बल्य, उत्तेजक एवं कफपित्तकर है।

बदाम को रातभर गरम पानी में भिगोकर दूसरे दिन थोड़ी देर पकाकर उसकी पेया बनाते हैं। यह श्वसन एवं मूत्रजननेन्द्रिय संस्थान के रोगों, मधुमेह तथा स्त्रियों के कटिशूल एवं श्वेत प्रदर में देते हैं।

मात्रा—पेया २ से ४ तोला।

नोट—देशी बादाम (जंगली बादाम), ले०-टर्मिनेलिया कैटेप्पा, कॉम्ब्रेटेसी (*Terminalia catappa Linn. Fam. Combretaceae*) नामक एक अन्य वृक्ष भी पाया जाता है। इसमें बादाम सदृश बीज पाया जाता है तथा बीज तैल का प्रयोग बादाम के तैल के स्थान पर भी करते हैं। इसकी छाल संग्राही होती है एवं पत्तों का मलहम चर्मरोगों में काम में लाया जाता है।

अथ सेवम्। तस्य नामगुणानाह

मुष्टिप्रमाणं बदरं सेवं सिवितिकाफलम्[1] ॥ १२५ ॥
सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद् गुरु। रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत् ॥ १२६ ॥

सेव के संस्कृत नाम मुष्टिप्रमाण, बदर अथवा मुष्टिप्रमाणबदर, सेव तथा सिवितिकाफल ये सब हैं।

सेव-रस तथा विपाक में मधुररस युक्त, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), कफकारक, गुरु, शीतल, रुचि तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है॥ १२५-१२६॥

४७ सेव

हि०—सेव, सेब। **बं०**—सेव। **म०, गु०**—सफरचंद। **क०**—सेबु। **अ०**—तुफाह। **फा०**—सेब, सिब। **अं०**—Apple Tree (ॲपल् ट्री)। **ले०**—*Pyrus malus Linn.* (पाइरस मॅलस्)। Fam. Rosaceae (रोझेसी)।

हिमालय, पंजाब, सिंध, उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश, मध्यभारत एवं डेक्कन में इसकी उपज की जाती है। उत्तर पश्चिम हिमालय में वन्य भी पाया जाता है।

इसका वृक्ष-३० फीट से अधिक ऊँचा नहीं होता। नयी शाखा, पत्र का अधर पृष्ठ, एवं पुष्प व्यूह, श्वेताभ रजावरण से ढके रहते हैं। **पत्ते**-२ से ३ इञ्च, अंडाकार, गोल दन्तुर एवं कुछ लम्बाग्र होते हैं। **पुष्प**-१½-२ इञ्च व्यास के एवं गुलाबी होते हैं। **फल**-गोल, छोटे डंठल एवं

१. सिम्बि(म्बि)तिका इति पाठा.।

स्थाई बाह्यदल से युक्त एवं दोनों तरफ से अन्दर धंसा हुआ होता है। खट्टा तथा मीठा ऐसे दो भेद पाये जाते हैं। पके फल को लोग खाते हैं तथा उसका मुरब्बा भी बनाते हैं।

इसकी छाल एवं मूल का भी उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—पत्ते एवं छाल में एक ग्लूकोसाइड फ्लोरिजिन् (Phlorizin) होता है। बीजों में ॲमिग्डॅलिन पाया जाता है। फ्लोरिजिन् के प्रयोग से वृक्क द्वारा शर्करा का अधिक उत्सर्ग होने लगता है। फल में मॅलिक अम्ल, खटिक, फॉस्फेट आदि होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके फल मधुर, शीत, ग्राही, शुक्रल, बृंहण, कफकर, एवं वातपित्तहर होते हैं। यह हृदय, मस्तिष्क, यकृत एवं आमाशय को शक्ति देनेवाला है। रक्तातिसार तथा आमातिसार में सेव का मुरब्बा देते हैं। विबंध में भी इसका उपयोग होता है।

इसकी छाल का क्वाथ पार्यायिक ज्वर में दिया जाता है।

इसकी जड़ कृमिघ्न, दाहशामक एवं निद्राजनक है।

अथामृतफलम् (यद् बदक्सान-काबिल-प्रभृतिषु देशेषु "नाशपाती" तिनाम्ना प्रसिद्धम्) तस्य गुणानाह

अमृतफलं लघु वृष्यं सुस्वादु त्रीन्हरेद्दोषान्। देशेषु मुद्गलानां-बहुलं तल्लभ्यते लोकैः १२७

अमृत फल—यह बदक्सान तथा काबिल आदि देशों में "नाशपाती" नाम से प्रसिद्ध है।

नाशपाती-लघु, वृष्य (वीर्यवर्धक), अत्यन्त स्वादिष्ट एवम् तीनों दोषों को दूर करने वाली होती है और मुगलों के देश में इसे बहुलता से लोग पाते हैं ॥ १२७ ॥

४८ नाशपाती

सं०–टङ्क। **हिं०**–नाशपाती। **म०**–नास्पती। **ता०**–पेरिक्के। **ते०**–बेरिकाय। **अं०**–Pear (पीअर)। **ले०**–*Pyrus communis Linn.* (पाइरस कम्युनिस्)। Fam. Rosaceae (रोझेसी)।

उत्तर पश्चिम हिमालय में इसकी बहुत उपज की जाती है। यह कश्मीर, ईरान एवं अफगानिस्तान आदि में भी होती है।

इसका वृक्ष मध्यमाकार का होता है तथा नये वृक्षों की टहनियों पर कुछ कांटे होते हैं। **पत्ते**–चौड़ाई लिये हुए अंडाकार, अखण्ड या कुण्ठित दन्तुर एवं पतले और पत्र बराबर लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**–श्वेत आते हैं। **फल**–यह स्थान भेद से अनेक आकार प्रकार का होता होता है। काश्मीर आदि की नासपाती अधिक मुलायम रहती है। स्वाद में यह मधुर होती है। इसकी कलम करके सुधारी हुई जाति को नाक कहा जाता है जो अधिक मधुर तथा मुलायम होता है।

गुण और प्रयोग—यह कषाय, मधुर, गुरु, शीतवीर्य, वातकर एवं ज्वरहर है।

कुछ पक्व फल को काटकर, सुखाकर उसका चूर्ण बना, आटे में मिला रोगी को पथ्यरूप में दिया जाता है।

इसके बीज, जिन्हें अंच् या अंचक कहते हैं, उनकी मज्जा पौष्टिक मानी जाती है।

अथ पीलुः। तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

पीलुर्गुडफलः स्रंसी तथा शीतफलोऽपि च। पीलु श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत् ॥
स्वादु तिक्तञ्च यत्पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत् ॥ १२८ ॥

पीलू के संस्कृत नाम—पीलु, गुडफल, स्रंसी तथा शीतफल ये सब हैं।

पीलु—मल का भेदन करने वाला, पित्तजनक एवम् कफ, वायु तथा गुल्म को दूर करने वाला है। जो पीलू-स्वादिष्ट तथा तिक्तरस युक्त होता है वह अत्यन्त उष्ण नहीं होता तथा त्रिदोषनाशक होता है ॥ १२८ ॥

४९ पीलु

हिं०–पीलु, छोटा पीलु, खरजाल। **बं०**–पीलुगाछ। **म०**–पिलु। **गु०**–पीलु, खारी जाल **क०**–गेनुमर। **ते०**–गोगु। **ता०**–पेरुन्गोलि। **फा०**–दरख्ते मिस्वाक्। **अ०**–अराक। **पं०**–पीलु, जाल, वण। **राजपु०** झाल। **ले०**–*Salvadora persica Linn.* (साल्वेड़ोरा पर्सिका)। Fam. Salvadoraceae (साल्वेडोरेसी)।

यह राजपुताना, बिहार, कोंकण, सरकार, डेक्कन, कर्नाटक, बलूचिस्तान, सिंध आदि स्थानों में शुष्क प्रदेशों में होता है।

इसका **वृक्ष**-छोटा एवं सदा हरा भरा रहता है। स्तम्भ–टेढ़ा मेढ़ा होता है और शाखायें नीचे झुकी हुई और दुर्बल होती हैं। पत्ते-विपरीत, चर्मसदृश या मांसल, अण्डाकार, आयताकार, १॥–२ इञ्च लंबे तथा दोनों सिरों पर गोल होते हैं। इस पर छोटे-छोटे फूल बारहो मास आते रहते हैं और वे हरापन युक्त सफेद होते हैं। फल–आध इञ्च गोल, चिकने और पकने पर लाल हो जाते हैं। सूंघने पर इनमें राई आदि के समान तीक्ष्ण गंध आती है तथा इसमें एक बीज होता है। एक दूसरा बड़ा पीलु होता है जिसको लॅटिन में–Salvadora oleoides Dcne. (साल्वेडोरा ओलीओडीस्) कहते हैं। इसके फल पकने पर पीले, सूखने पर लाली लिये भूरे रङ्ग के होते हैं।

रासायनिक संगठन—पीलु में एक क्षाराभ ट्राइमेथिलामाइन (Trimethylamine) पाया जाता है। बड़े पीलु में भी यह क्षाराभ होता है तथा बीज में दोनों प्रकार के तेल होते हैं।

गुण और प्रयोग—लघु पीलु के पत्ते विरेचक होते हैं तथा कास में दिये जाते हैं। इसके बीजों का तेल राई के तेल की तरह होता है तथा आमवातादि में लगाया जाता है। इसके जड़की छाल उत्तेजक, स्वेदजनन एवं कुछ मूत्रजनन है। इसका क्वाथ ज्वर में दौर्बल्य तथा प्रलाप दूर करने के लिये देते हैं। इसको गर्भिणी को न दें।

वृद्धपीलु के पत्ते वातनाशक होने के कारण उनको गरम करके पीड़ायुक्त स्थानों को सेंकते हैं। छाल उत्तेजक एवं उष्ण होने के कारण ज्वर में दौर्बल्य होने पर तथा आर्तव रुक जाने पर देते हैं। फल–उष्ण, दीपन, वातहर एवं मूत्रजनक हैं। इनमें शर्करा बहुत रहती है। संधिवात एवं प्लीहा वृद्धि में फल देते हैं। बीज आनुलोमिक एवं विषघ्न हैं। सर्पविष में इनका उपयोग करते हैं। बीजों का तेल स्वेदजनन एवं उत्तेजक होने के कारण पुराने सन्धिरोगों में इसकी मालिश की जाती है। इस तेल को किंकणेल या खिकणेल कहते हैं।

अथाक्षोटः (अखरोट) तस्य नामगुणानाह

पीलुः शैलभवोऽक्षोटः कर्परालश्च कीर्तितः। अक्षोटकोऽपि वाताद्समदृशः कफपित्तकृत् ॥१२९॥

अखरोट के संस्कृत नाम—शैलभव पीलु, अक्षोट तथा कर्पराल ये सब हैं। (जो पीलू पर्वत पर उत्पन्न होता है उस को "अखरोट" कहते हैं)।

अखरोट- गुणों में बादाम के सदृश होता है एवम् कफ तथा पित्त का वर्धक होता है ॥ १२९

५० अखरोट

हि०–अखरोट, अक्षोट, पहाडी पीलु। **बं०**–आखरोट। **पं०**–अखरोट। **म०**–अक्रोड। **गु०**–अखरोड। **ते०**–अक्षोलमु। **ता०**–अक्रोट्ट। **क०**–आखोट। **आसा०**–कबसिंग। **फा०**–चार मग्ज, जिर्दगां। **अ०**–जोज़ हिन्दी, जोज़ेजुल हिन्द, जोज़्। **अफगा०**–उप्पस्। **अं०**–Walnut (वालनट) **ले०**–*Juglans regia Linn.* (जग्लान्स रेजीया)। Fam. Juglandaceae (जग्लैन्डेसी)।

यह हिमालय के उष्ण भागों में ३ से १० हजार फीट तक एवं खासिया पर्वत तथा बलुचिस्तान में होता है। कश्मीर में इसकी बहुत उपज की जाती है।

इसका वृक्ष ऊंचा होता है तथा छाल धूसर एवं लम्बाई में फटी होती है। शाखाओं पर मृदु रजावरण होता है। **पत्ते**–असम पक्षवत्, एकान्तर तथा ६ से १५ इञ्च लम्बे होते हैं। पत्रक-संख्या में ५–१३, दीर्घवृत्ताभ से लेकर आयताकार भालाकार, ३–८ × १·५–४ इञ्च बड़े, न्यूनाधिक विनाल एवं प्रायः अखण्ड होते हैं। **पुष्प**–छोटे, पीताभ हरे एवं एक लिंगी होते हैं। **फल**–कुछ लंबाई लिये हुये गोल एवं २ इञ्च व्यास में एवं बाह्यस्तर (Exocarp) हरा तथा चर्मवत् रहता है। इसके अन्दर अन्तस्तर कठोर काष्ठीय, सिकुड़नदार एवं दो कोष्ठ युक्त होता है जिसमें ४ खण्डवाला तेल से भरा हुआ, टेढ़ा मेढ़ा धूसर श्वेत रंग का बीज होता है। इन्हीं बीजों को लोग खाते हैं।

स्थान भेद से अन्तस्तर (Endocarp) के स्वरूप के अनुसार इसके कई प्रकार होते हैं। इसमें सबसे अच्छा **कागजी अखरोट** होता है जो बड़ा, अन्तस्तर पतला तथा उसकी मींगी श्वेत तथा अधिक स्वादिष्ट रहती है। इसकी **छाल दण्डासा** के नाम से बिकती है जिसको दांत साफ करने के लिये तथा चबाकर होंठ लाल करने के लिये उपयोग में आते हैं। बाल रंगने के लिये हरे फल के छिलकों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें तैल, अनेक पोषक तत्त्व, विटामिन 'बी', 'ए', 'सी', लेसिथिन तथा अनेक खनिज होते हैं। खनिज में लोह, ताम्र, खटिक, फास्फोरस, यशद, कोबाल्ट, मैंगनेशियम, आर्सेनिक, गंधक, आयोडिन, मैंगनीज, पोटेशियम् तथा सोडियम् होते हैं। इनके अतिरिक्त कच्चे फलों में विटामिन 'सी' बहुत होता है। पत्तों में विटामिन 'सी' एवं उड़नशील तैल रहता है। इनका जलीय सत्त्व अनेक जीवाणु के लिये घातक होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी मींगी, पौष्टिक, बल्य, बृंहण, क्षतक्षयनाशक एवं आमवातहर होती है। आमवात, वातरक्त आदि में इसका उपयोग करते हैं। इसके पत्ते पौष्टिक एवं कृमिघ्न होते हैं। इनका क्वाथ गंडमाला में लाभदायक होता है। इसकी छाल को पीसकर शोथपर लगाते हैं। इसका तेल स्फीतकृमि में लाभदायक माना जाता है।

नोट—एक जङ्गली अखरोट होता है जो आसाम तथा विशेषरूप से दक्षिण में होता है। यह एल्यूराइटिस् मोलुक्केना (Aleurites moluccana, Willd.), युफोर्बिएसी (Fam. Euphorbiaceae) है। इसके फल अंडाकार, दो इञ्च व्यास के होते हैं जिसके अन्दर दो बीज अखरोट जैसे निकलते हैं। इसमें तेल होता है। यह १ से २ औंस की मात्रा में विरेचक होता है। बीजों को भूनकर खाया जाता है जिसमें कुछ विरेचक गुण रहता है। इन्हें बिना भूने नहीं खाना चाहिये क्योंकि इसमें एक विषैला तत्व होता है जो भूनने से नष्ट हो जाता है। बीजों की बत्ती बनाकर जलाते हैं जिससे इसे 'दी कैंडल नट ट्री' (The candle nut tree) भी कहते हैं।

भावप्रकाशकार अखरोट को पर्वत पर होने वाला पीलु कहते हैं किन्तु इसके स्वरूपादि से इनमें कोई साम्य नहीं मालूम पड़ता।

अथ बीजपूरः (बिजौरा)। तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फलपूरकः। बीजपूरफलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ॥ १३० ॥
रक्तपित्तहरं कण्ठजिह्वाहृदयशोधनम्। श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥ १३१ ॥

बिजौरा नीबू के संस्कृत नाम—बीजपूर, मातुलुङ्ग, रुचक तथा फलपूरक ये सब हैं।

बिजौरा के फल—स्वादिष्ट, अम्लरसयुक्त, अग्निदीपक, लघु, हृदय के लिये हितकर, कण्ठ-जिह्वा तथा हृदय को शोधन करने वाले एवम्-रक्तपित्त श्वास-कास-अरुचि तथा तृषा को दूर करने वाले होते हैं ॥ १३०–१३१ ॥

५१ बिजौरा

हि०–बिजौरा नींबु, तुरंज। **बं०**–टाबालेबु, छोलोंगनेबु, बेगपूर। **म०**–महालुङ्ग। **गु०**–बिजोरू। **क०**–मादल। **ता०**–मादलम्। **ते०**–लुंगमु, मादिफलमु। **फा०**–तुरंज, तरञ्ज। **अ०**–ऊत्तरञ्ज, उतरञ्ज। **अं०**–Citron (सिट्रोन)। **ले०**–Citrus medica Linn. (साइट्रस मेडिका)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

इसके वृक्ष छोटे, करीब १० फीट ऊँचे होते हैं और वाटिकाओं में लगाये जाते हैं। चटगांव तथा सिताकुंड, खासिया एवं गारो पहाड़ों पर तथा कुमाऊँ में सरजू के किनारे यह वन्य भी पाया जाता है। **शाखाएँ**–मोटी, छोटी, कंटीली एवं इतस्ततः फैली होती हैं। इसके **पत्ते**–नीबू के पत्ते के आकार वाले परन्तु लम्बाई चौड़ाई में उनसे बड़े होते हैं। **वृन्त**–इस प्रजाति में वृन्त प्रायः पक्षयुक्त हुआ करता है किन्तु इस जाति में यह पक्षहीन या अल्प किनारेदार तथा छोटा होता है। **फूल**–सफेद आते हैं। **फल**–लम्बाई युक्त गोल, ४–६ इंच व्यास में और नोकदार सा होता है। इसका छिलका मोटा, खुरदरा, उभारदार एवं पकने पर पीले रंग का होता है। इसकी गुद्दी हलकी पीली, अल्प, साधारण अम्ल या मधुराभ किन्तु स्वादहीन होती है। इसके दो वर्ग मुख्यरूप से किये जाते हैं। एक मीठे तथा दूसरे खट्टे। इसके कई उपभेद पाये जाते हैं जिनमें ये मुख्य हैं।

(१) **खागुरा**–गुदीहीन तथा छोटे फल। (२) **तुरंज**–बड़े फल, अम्ल किन्तु छिलका मधुराभ। (३) **बजौरा**–छोटे, अम्ल, रस से भरे एवं पतले छिलके वाले फल। (४) एक विशेष प्रकार उत्तर पश्चिम भारत में होता है जिसमें फल का स्वरूप मुड़ी हुई अंगुलियों से युक्त करतल के समान दिखलाई देता है।

रासायनिक संगठन–छिलके में अत्यंत सुगंधित तेल होता है जिसे सिट्रोन तेल (Citron oil) कहते हैं।

गुण और प्रयोग—यह अम्ल, दीपन, हृद्य, वमनरोधक, अरुचिनाशक एवं शोणितास्थापन है।

इसका छिलका ग्राही, सुगंधि तथा तिक्त पौष्टिक होता है। पुष्प तथा कलियां अल्प स्वप्नजनन एवं ग्राही होती हैं। मूल को पीसकर कृमि, वमन तथा मूत्राश्मरी में देते हैं। ज्वर में पत्तों का फांट पिलाते हैं।

अथ मधुकर्कटी (बिजौराभेद, चकोतरा)। तस्या नामगुणानाह

बीजपूरोऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी ॥ १३२ ॥
मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः। रक्तपित्तक्षयश्वासकासहिक्काभ्रमापहा ॥ १३३ ॥

चकोतरा नीबू के संस्कृत नाम—दूसरी जाति का जो बिजौरा होता है उसे मधुर तथा मधुकर्कटी कहते हैं।

चकोतरा (नीबू)–स्वादिष्ट, रोचक, शीतल, गुरु, एवम् रक्तपित्त, क्षय, श्वास, कास, हिक्का तथा भ्रमरोग को दूर करता है ॥ १३२–१३३ ॥

५२ चकोतरा

हि०, बं०–चकोतरा, महानिबू । **म०**–पोपनस । **गु०**–ओबकोतल । **ते०**–पंपरंनासा । **ता०**–पंबालेमसु । **क०**–सकोतरे, सक्कोटा । **अं०**–Shaddock (शेडॉक्), Pummelo (प्यूमेलो) । **ले०**–*Citrus decumana Linn.* (साइट्रस डेक्युमॅना) । Fam. Rutaceae (रूटेसी) ।

इसको बागों में लगाते हैं । इसका वृक्ष–छोटा, करीब १५ फीट ऊँचा होता है और सदा हरा भरा रहता है । पत्ते–गहरे हरे, बिजोरे से भी बड़े २ होते हैं । वृन्त–चौड़े पक्षयुक्त होते हैं। फूल–सफेद रंग के आते हैं। फल–बड़े २, गोल एवं ६–८ इंच व्यास के फल भी देखने में आते हैं जो पकने पर फीके पीले रंग के होते हैं । इसके गूदी के दाने फीके गुलाबी या श्वेत रंग के होते हैं और स्वाद में मीठे होते हैं । इसके बीजयुक्त, बीजहीन एवं छोटे, बड़े आदि भेद होते हैं । पतले छिलके वाला बंबई का चकोतरा सबसे अच्छा होता है । ग्रेपफ्रूट (Grape fruit) नामक जाति सा. पॅरॅडिसि (C. paradisi) के फल की अपेक्षा ये बड़े, छिलका मोटा तथा कड़ा, गूदा ठोस एवं अलग अलग फल पेड़ पर लगते हैं ।

रासायनिक संगठन—छिलके में सुगन्धित तैल पाया जाता है ।

गुण और प्रयोग—फल पोषक, हृद्य एवं तृषाशामक होता है । इसके पत्ते अपस्मार, कंपवात तथा आक्षेपयुक्त कास में दिये जाते हैं ।

अथ जम्बीरद्वयम् । तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

स्याज्जम्बीरो दन्तशठो जम्भजम्भीरजम्भलाः । जम्बीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत् ॥
शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णाऽऽमदोषजित् ।
आस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यक्रिमीन् हरेत् ॥
स्वल्पजम्बीरिका तद्वत्तृष्णाच्छर्दिनिवारिणी ॥ १३५ ॥

जम्बीरीनीबू के संस्कृत नाम—जम्बीर, दन्तशठ, जम्भ, जम्भीर तथा जम्भल ये सब हैं ।

जमीरीनीबू—उष्ण, गुरु, अम्लरसयुक्त एवम्–वात–कफ–मल का विबन्ध–शूल–कास–कफोत्क्लेश–वमन–तृषा–आमसम्बन्धी दोष–मुख की विरसता–हृदय की पीड़ा–अग्नि की मन्दता तथा क्रिमि को दूर करने वाला होता है । छोटा जमीरीनीबू का संस्कृत नाम–स्वल्पजम्बीरिका है । यह यद्यपि गुणों में जमीरीनीबू के समान है परन्तु विशेषतः तृषा तथा वमन का नाशक है ॥ १३४–१३५ ॥

५३ जमीरीनीबू

हि०–जमीरीनीबू, बड़ानीबू, पहाड़ीकागजी । **बं०**–जामीरालेबू, गोंडा लेंबु, । **म०**–इड लिंबु । **गु०**–गोदडिया लिंबु, दोडिंगा । **क०**–काडलिम्बे । **ते०**–जांभिर निम्म । **ता०**–पेरिययेलुमिच्चई । **अं०**–Lemon (लेमन) । **ले०**–*Citrus limon Linn.* (साइट्रस् लिमन्) । Fam. Rutaceae (रुटेसी) ।

उत्तरप्रदेश, मैसूर, मद्रास तथा बंबई में इसे लोग अपने बगीचों में लगाते हैं । इसका वृक्ष–झाड़ीदार, छोटा, १०–१२ फीट ऊँचा एवं कंटकित होता है । पर्णवृन्त या तो पक्षहीन रहता है या पक्ष बहुत छोटे होते हैं । पुष्प–एकाकी या कभी-कभी युग्म, १॥–२ इंच व्यास के होते हैं ।

फल–आयताकार, अंडाकार, अग्र कुछ बाहर निकला हुआ, चमकीले पीले रंग का, छिलका मोटा एवं अन्दर से हलका पीला तथा स्वाद में खट्टा होता है । इसका एक प्रकार पठानकोट के पास गलगल नाम का होता है । अन्य विदेशी प्रकार भी पाये जाते हैं जिनमें बीज नहीं रहता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें विटामिन 'सी' नीबू की अपेक्षा अधिक रहता है । इसके अतिरिक्त विटामिन 'बी' १, कॅरोटीन तथा साइट्रिक अम्ल आदि द्रव्य पाये जाते हैं । रस में न्यूमोनिया रोधी तत्व एवं तृणाणुनाशक तत्व होते हैं । छिलके में सुगंधीतैल एवं तिक्त द्रव्य होता है ।

गुण और प्रयोग—यह अम्ल, वातकफनाशक, दीपन, पाचन एवं तृष्णा निवारक है । अतिसार, संग्रहणी आदि में इसे देते हैं । इसका शरबत बनाकर पीते हैं तथा अन्य पदार्थों में खटाई के लिये इसका उपयोग किया जाता है ।

अथ निम्बूकम् (कागजी नीबू) । तस्य नामगुणानाह

निम्बूः स्त्री निम्बुकं क्लीबे निम्बूकमपि कीर्त्तितम् । निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥

कागजी नीबू के संस्कृत नाम—निम्बू (यह स्त्रीलिङ्गी है), निम्बुक (यह नपुंसकलिङ्गी है) तथा निम्बूक ये सब हैं ।

कागजीनीबू—अम्लरसयुक्त, अग्निदीपक, पाचक, लघु तथा वातनाशक होता है ॥ १३६ ॥

अन्यच्च

निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं-तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम् ।
वातपित्तकफशूलिने हितं-कष्टनष्टरुचिरोचनं परम् ॥ १३७ ॥
त्रिदोषवह्निक्षयवातरोग-निपीडितानां विषविह्वलानाम् ।
मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं-विषूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १३८ ॥

अन्य कहे हुए कागजी नीबू के और भी गुण—कागजी नीबू—कृमिसमूह का नाशक, तीक्ष्ण, अम्लरसयुक्त, उदरपीड़ा तथा ग्रहबाधा को दूर करनेवाला, वात पित्त तथा कफ सम्बन्धी शूलरोगवालों के लिए हितकर, कष्ट से जिनकी अन्न की रुचि नष्ट हो गई है उसे पुनः उत्पन्न करने वाला होता है और त्रिदोष अग्निक्षीणता तथा वातरोग से पीड़ित, विष से विह्वल, मन्दाग्नि, मलबन्ध तथा हैजा रोग से युक्त रोगियों को कागजीनीबू खिलाना हितकर है ऐसा मुनियों का मत है ॥

५४ नींबू

हि०–कागजी नीबु, नींबू । **बं०**–कागदी लेंबु, पति लेंबु । **म०**–लिंबु । **गु०**–लींबु, कागदी लीम्बु । **ता०**–एलुमिच्चै । **क०**–लिम्बे । **ते०**–निम्म पंडु । **फा०**–लिमुने तुर्श, लींबू, लीमूं । **अ०**–लिमुने हाजिम, लेमू हाज़िम । **अं०**–Lime (लाइम्) । **ले०**–*Citrus medica var. acida* (साइट्रस् मेडिका भेद ॲसिडा) । Fam. Rutaceae (रूटेसी) ।

इसकी सभी स्थानों पर, ४००० फीट की ऊँचाई तक उपज की जाती है तथा हिमालय की उष्ण घाटियों में यह वन्य अवस्था में भी पाया जाता है ।

इसके वृक्ष–छोटे, ५–२० फीट ऊँचे, कंटकित झाड़ीदार होते हैं । पत्ते–वृन्त थोड़ा सा पक्षयुक्त होता है । पुष्प–छोटे, आधा इंच व्यास में, एक साथ ३ से १० की संख्या में पत्रकोण में आते हैं । फल–गोल, १–२॥ इंच व्यास में, चिकना या झुर्रीदार; छिलका पतला तथा गुद्दी से लगा हुआ,

हरा तथा पकने पर कुछ पीत; गुदी पीत हरित, अम्ल, सुगंधि एवं अंदर की कली छोटी तथा चमकीली रहती है।

इसके भी अनेक कृषित उपभेद पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—रस में साइट्रिक अम्ल, विटामिन 'सी' एवं छिलके में उड़नशील तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, पाचन, किंचित् उष्ण, चक्षुष्य, हृद्य, रक्तपित्तप्रशमन, तृष्णानिग्रहण, ज्वरहर एवं मूत्रजनन है।

रक्तपित्त, आमवात, ज्वर, अतिसार, वमन तथा पित्त के विकारों में इसका रस दिया जाता है। खटाई के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

अथ मिष्टनिम्बूफलम् (मीठा नींबू)। तस्य गुणानाह

मिष्टनिम्बूफलं स्वादु गुरु मारुतपित्तनुत् ॥ १३९ ॥
गलरोगविषध्वंसिकफोत्क्लेशि च रक्तहृत्। शोषारुचितृषाच्छर्दिहरं बल्यञ्च बृंहणम् ॥१४०॥

मीठे नींबू का संस्कृत नाम—मिष्टनिम्बू है।

मीठा नींबू—स्वादिष्ट, गुरु, बलकारक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), कफ सम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करने वाला एवम् वात-पित्त-गले के रोग-विष-रक्तविकार-शोष-अरुचि-तृषा तथा वमन को दूर करने वाला होता है॥ १३९-१४० ॥

५५ मीठा नींबू

हि०-मीठानीबू, शरबती नींबू। **बं०**-मीठा लेंबू। **म०**-साखरलिंबू। **गु०**-मीठालिम्बू। **ता०**-कोलुमिचंगै। **ते०**-गजनिम्मा। **क०**-इम्बे। **फा०**-लिमुने शिरीं। **अ०**-लिमू नेदुलु। **अं०**-Sweet Lime (स्वीट लाइम्)। **ले०**-*Citrus limettioides Tanaka* (साइट्रस् लिमेट्टिओइडिस्)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

मध्य तथा उत्तरीभारत में इसकी उपज की जाती है।

इसका वृक्ष-छोटा तथा कागजी नींबू जैसा होता है। पत्ते-संतरे के पत्ते जितने बड़े किन्तु हलके रंग के तथा तैल ग्रन्थियाँ अधिक स्पष्ट रहती हैं। वृन्त पक्षयुक्त होते हैं। पुष्प-बड़े तथा श्वेत होते हैं। फल-गोल, ३-५ इञ्च व्यास में, हलके पीले या हलके हरे रंग के; छिलका पतला एवं चिकना; गुदी मधुर या स्वादहीन रहती है। यह बरसात के अंत में फलता है जब कि अन्य नींबू कम मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—छिलके में जंबीरनीबू जैसी गंध का तेल होता है।

गुण और प्रयोग—फल को कामला तथा ज्वर में देते हैं। इसको लोग खाते भी हैं।

५६ मोसंबी

नोट—यद्यपि यह भारत एवं चीन का आदिवासी है तथापि भावप्रकाशकार इसका उल्लेख नहीं करते। इसी प्रजाति का यह उपयोगी फल होने के कारण संक्षेप में यहाँ इसका वर्णन किया जा रहा है।

हि०, बं०, म०, गु०-मोसंबी। **अं०**-Mozambique Orange (मोझंबीक आरेञ्ज); Sweet Orange (स्वीट आरेंज)। **ले०**-*Citrus sinensis* (*Linn.*) *Osbeck.* (साइट्रस साइनेन्सिस्)

अनेक प्रान्तों में इसकी उपज की जाती है। इसका वृक्ष-३० फीट तक ऊँचा, फैला हुआ होता है। पर्णवृन्त का पक्ष कम चौड़ा रहता है। फल-गोल, स्वर्णपीत या नारंगी वर्ण का; छिलका मोटा अंदर गुदी में चिपका हुआ; गुदी पीत, नारंग या रक्ताभ एवं स्वाद मधुर या अम्ल रहता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में प्रशीताद विरोधी विटामिन रहता है। फूलों से प्राप्त नेरोली तेल (Neroli oil) एवं पत्तों से प्राप्त पेटिटग्रेन तेल (Petitgrain oil) का उपयोग सुगंधि इत्रों के लिए करते हैं।

गुण और प्रयोग—फल का रस ज्वर, तृष्णा, प्रतिश्याय, क्षुधानाश, पैत्तिक विकार एवं पैत्तिक अतिसार में दिया जाता है। छिलका दीपन एवं बल्य होता है। मुहांसे पर छिलके को रगड़ने से लाभ होता है।

अथ कर्मरङ्गम् (कमरख)। तस्य नामगुणानाह

कर्मरङ्गं शिरालं च बृहदम्लं रुजाकरम्। कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातहृत् ॥ १४१ ॥

कमरख के संस्कृत नाम—कर्मरङ्ग, विशाल, बृहदम्ल तथा रुजाकर ये सब हैं।

कमरख—स्वादिष्ट तथा अम्ल रसयुक्त, शीतल, ग्राही एवम्—कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है। १४१ ॥

५७ कमरख

हि०-कमरख। **बं०**-काम रांगा। **म०**-कमरख, कर्मर। **क०**-दारेहुलि। **गु०**-कमरख। **ते०**-तमर्ता। **ता०**-तमर्त्तै। **अं०**-Carambola (करम्बोला)। **ले०**-*Averrhoa carambola Linn.* (एवेर्होआ कैरेम्बोला)। Fam. Oxalidaceae (ऑक्सेलिडेसी)।

यह गरम प्रान्तों की वाटिकाओं में रोपण किया जाता है। इसका वृक्ष-छोटा, १५-३० फीट ऊँचा एवं सदाहरित होता है और शाखायें बहुत होती हैं। पत्ते-कसौंदी के पत्तों के समान अण्डाकार और नुकीले होते हैं। फूल-छोटे-छोटे सफेद या किञ्चित् लाली लिये आते हैं। फल-३-४ इञ्च लम्बे, पाँच कोनेवाले, गूदेदार, सुगंधि, हरे रंग के एवं पकने पर पीले रंग के होते हैं। कच्ची अवस्था में इनका स्वाद कषाय रहता है किन्तु पकने पर किंचित् मधुराम अम्ल हो जाता है।

इसके दो प्रकार खट्टे एवं मीठे पाये जाते हैं जिनमें से मीठा बंगाल की तरफ होता है।

इसका साग, चटनी, अचार एवं शर्बत बनाया जाता है। इससे लोहे इत्यादि धातुओं में लगी जंग छुड़ाई जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें विटामिन 'ए', १०० ग्राम में २४० एकक होता है तथा एसिड पोटेशियम् आक्सॅलेट (Acid potassium oxalate) भी पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—पका फल शीतल, बल्य, रोचक एवं रक्तशोधक है। इसका शरबत बनाकर ज्वर, रक्तपित्त, रक्तार्श एवं तृष्णा आदि में पिलाते हैं।

अथाम्लिका (इमली)। तस्या नामानि तत्पक्वफलगुणांश्चाह

अम्लिका चुक्रिकाऽम्ली च चुक्रा दन्तशठाऽपि च।
अम्ला च चिञ्चिका चिञ्चा तिन्तिडीका च तिन्तिडी ॥ १४२ ॥
अम्लिकाऽम्ला गुर्वातहरी पित्तकफास्रकृत्। पक्वा तु दीपनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत् ॥

इमली के संस्कृत नाम—अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, अम्ला, चिञ्चिका, चिञ्चा, तिन्तिडीका तथा तिन्तिडी ये सब हैं।

कच्ची इमली—अम्ल रसयुक्त, गुरु, वातनाशक, एवम् पित्त-कफ तथा रुधिरविकार को करने वाली होती है। **पकी इमली**—अग्निदीपक, रूक्ष, सारक, उष्ण एवम्—कफ तथा वातनाशक होती है॥ १४२-१४३॥

५८ इमली

हि०—इमली। **बं०**—तेंतुल। **म०**—चिंच। **क०**—हुणिसे। **गु०**—आंवली। **ते०**—चिंत। **ता०**—पुळि। **फा०**—तिमिर हिन्दी। **अ०**—तमर हिन्दी। **अं०**—Tamarind Tree (टेमरिंड ट्री)। **ले०**—*Tamarindus indica Linn.* (टेमरीण्डस् इण्डिका)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इमली के वृक्ष प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होते हैं। इसका **वृक्ष**—बहुत बड़ा होता है और सदा हरा भरा रहता है। **शाखायें**—बहुत फैली हुई होती हैं। **पत्ते**—२ से ५ इञ्च लम्बे, संयुक्त पक्षाकार होते हैं। **पत्रक**—संख्या में १० से २० जोड़े, ८-३०×५-८ मि. मी. बड़े, आयताकार कुण्ठिताग्र, चिकने एवं शिराविन्यास जालीदार होता है। **फूल**—लाली युक्त पीले रंग के आते हैं। **फलियां**—३ से ८ इञ्च लंबी, १ इञ्च चौड़ी, ०·४ इञ्च मोटी कुछ टेढ़ी एवं भूरे रंग की होती हैं। **बीज**—३ से १२, चिकने, चमकीले, चिपटे तथा भूरे रंग के होते हैं। इमली का स्वाद अम्ल एवं मधुर रहता है तथा इसमें सुगंध रहती है।

इसके फल, बीज, पत्र, पुष्प एवं क्षार का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। खटाई के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें साइट्रिक ॲसिड (Citric acid), टार्टरिक् ॲसिड (Tartaric acid), पोटॅशियम बाइटार्टरेट (Potassium bitartrate) एवं शर्करा आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—फलमज्जा तृषाशामक, रोचक, एवं सौम्य विरेचक होती है। ज्वर में विबन्ध एवं दाह होने पर इसका पन्ना बनाकर देते हैं। विबन्ध में सनाय आदि के साथ इसको देते हैं यद्यपि तीव्र विरेचक द्रव्यों के कार्य को यह कम करती है।

फली की शुष्क त्वचा की राख (क्षार) पेट के दर्द एवं मन्दाग्नि में दी जाती है। इसके छाल की राख क्षारीय एवं मूत्रजनन होती है तथा सोजाक में दी जाती है।

पत्तों को पीसकर व्रणशोथ में बांधते हैं। इसके बीज प्रमेह में लाभदायक होते हैं।

मात्रा—फल ४ से ३० माशा, बीजचूर्ण १ से ३ माशा, क्षार ५-१५ रत्ती।

नोट—इमली का पर्याय तिन्तिडीका दिया हुआ है किन्तु तिन्तिडीक एक अन्य द्रव्य है। मसूर जैसे लाल रंग के खट्टे दाने (फल) **समाक दाने** के नाम से मिलते हैं। यूनानी चिकित्सक इनके छिलकों का उपयोग करते हैं। यह **ले०**—*Rhus parviflora Roxb.* (हृस् पार्विफ्लोरा); Fam. Anacardiaceae (ॲनाकार्डियसी) के फल हैं। नमक मिलाकर इमली की तरह इनका भी उपयोग किया जाता है।

यह ग्राही, हृद्य, दीपन, शीत एवं रक्तपित्तशामक होते हैं। इनको पैत्तिक अतिसार, रक्तातिसार, वमन एवं हृत्कास में देते हैं। ज्वर में दाह एवं तृषा कम करने के लिये इनका उपयोग किया जाता है।

अथाम्लवेतसः (अमलबेंत)। तस्य नामानि तत्फलगुणांश्चाह

स्यादम्लवेतसश्चुक्रं शतवेधि सहस्रनुत्। अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम्॥ १४४॥
हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमहर्षणम्। रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्त्तनाशनम्॥१४५॥
हिक्काऽऽनाहारुचिश्वासकासाजीर्णवमिप्रणुत्॥
कफवातामयध्वंसिच्छागमांसद्रवत्वकृत्। चणकाम्लगुणं ज्ञेयं लोहसूचीद्रवत्वकृत्॥ १४६॥

अम्लवेतस के संस्कृत नाम—अम्लवेतस, चुक्र, शतवेधि तथा सहस्रनुत ये सब हैं।

अम्लवेतस—अत्यन्त अम्ल रसयुक्त, मलभेदक, लघु, अग्निदीपक, पित्तजनक, खाने से रोमाञ्च करने वाला, रूक्ष, बकरे के मांस को पकाने के समय डालने से शीघ्र गलाने वाला, लोहे की सूई को गलानेवाला, गुणों में चनाखार के समान एवम्-हृद्रोग-शूल-गुल्म-मल तथा मूत्रगत दोष-प्लीहा-उदावर्त्त-हिचकी-आनाह (अफरा)-अरुचि-श्वास-कास (खांसी)-अजीर्ण-वमन-कफ तथा वात-सम्बन्धी रोग इन सबों को नष्ट करने वाला होता है॥ १४४-१४६॥

५९ अम्लवेतस्

अम्लवेतस क्या द्रव्य है इस संबन्ध में विद्वानों में मतभेद है। यहाँ इसका फलवर्ग में पाठ किया गया है जिससे यह कोई फल ही है ऐसा अनुमान होता है। चरक (सू० अ० २५) में इसका भेदनीय, दीपनीय आनुलोमिक, वातश्लेष्महर, हृद्य, श्वासहर एवं दीपनीय महाकषाय (च० सू० अ० ४) में पाठ है। निम्न द्रव्यों को अम्लवेतस माना जा रहा है जिनमें से थैकल या निम्बु प्रजाति (Citrus) के किसी खट्टे फल को अम्लवेतस होने की अधिक संभावना है।

(१) **रेवंद चीनी क्षुप** (Rheum emodi Wall.)-हीयम् एमोडी; Fam. Polygonaceae-पोलीगोनेसी) की सुखाई हुई शाखाएँ—यह देखने में चोटी की तरह गुँथी हुई अमलबेत के नाम से बाजार में बिकती हैं। इनका स्वाद कुछ खट्टा होता है। (यादवजी-द्रव्यगुणविज्ञान उ० पृ० ११९)। इसकी पीली जड़ का उपयोग विरेचक गुण के लिये रेवाचीनी के नाम से किया जाता है।

(२) **थैकल**—यह आसाम की तरफ होने वाले एक वृक्ष गार्सिनिया पेडंक्युलेटा (Garcinia pedunculata Roxb.; Fam. Guttiferae-वर्ग, गट्टीफेरी) के फल हैं। यह गोल, ३-४·५ इञ्च व्यास के, पीत रंग के, खट्टे एवं स्वादिष्ट होते हैं। इनका उपयोग नींबू या जमीरी नींबू की तरह किया जाता है और इसीके अम्लवेतस होने की अधिक संभावना है।

(३) **चुक्र**—यह चूका साग, रूमेक्स वेसिकेरियस् (Rumex vesicarius Linn.) है जिसका वर्णन आगे शाकवर्ग में आया है।

(४) **निम्बु** (साइट्रस-Citrus) **प्रजाति के फल**—कुछ विद्वानों ने चकोतरा को अम्लवेतस माना है किन्तु चकोतरा इतना खट्टा नहीं होता। इस प्रजाति में अनेक प्रकार के खट्टे फल अवश्य पाये जाते हैं। संभव है कि इनमें से कोई अत्यम्ल फल अम्लवेतस सिद्ध हो।

अथ वृक्षाम्लकम् (विषाम्बिल, कोकम)। तस्य नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणांश्चाह

वृक्षाम्लं तिन्तिडीकञ्चचुक्रं स्यादम्लवृक्षकम्। वृक्षाम्लमाममम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम्॥
पक्वन्तु गुरु संग्राहि कटुकं तुवरं लघु॥ १४८॥

अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत्। तृष्णाऽर्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित् ॥१४९॥

कोकम के संस्कृत नाम—वृक्षाम्ल, तिन्तिडीक, चुक्र तथा अम्लवृक्षक ये सब हैं।

कोकम का कच्चा फल—अम्लरसयुक्त, उष्ण, कफ तथा पित्त को उत्पन्न करने वाला एवम् वात नाशक होता है।

पका फल—कटु, थोड़ा कषाय तथा अम्लरसयुक्त, गुरु, संग्राही, उष्ण, रोचक, रूक्ष, अग्नि-दीपक, तथा कफवातकारक एवम्—तृषा-अर्श-ग्रहणी-गुल्म-शूल-हृद्रोग तथा जन्तु नाशक होता है ॥ १४७-१४९ ॥

६० कोकम

हि०–कोकम। **म०**–अमसूल, कोकम, रताँबि, भिरंड, बीरुंड। **गु०**–कोकम। **क०**–मुर्गिन हुळि। **गोवा०**–भ्रिंडाओ। **ता०**–मुर्गल। **अं०**–Kokam Butter Tree (कोकम बटर ट्री)। **ले०**–*Garcinia indica Chois.* (गार्सिनिया इण्डिका)। Fam. Guttiferae (गट्टिफेरी)।

कोंकण, कनारा आदि दक्षिणी प्रान्तों में यह पाया जाता है। इसका वृक्ष-छोटा होता है। शाखायें झुकी हुई रहती हैं। पत्ते-अंडाकार, आयताकार-भालाकार, २.५-३.५ इञ्च लम्बे, १-१.५ इञ्च चौड़े और ऊपर से गहरे हरे किन्तु नीचे से हलके रंग के होते हैं। फल-गोल, १-१.५ इञ्च व्यास के तथा पकने पर जामुनी लाल रंग के होते हैं जिनमें ५-८ बड़े-बड़े बीज होते हैं। बीज निकाले हुए सुखाये हुए फल को अमसूल या कोकम कहा जाता है। बीजों से तेल निकलता है जो मोम जैसा जम जाता है। इसे कोकम का घी या तेल कहते हैं। कोकम का स्वाद मधुराम्ल रहता है तथा इसको खटाई के लिये लोग काम में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें मॅलिक् अम्ल एवं अल्प टिटाम्ल या निम्बुकाम्ल रहता है। बीजों में गाढ़ा मोम जैसा तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह हृद्य, ग्राही, उष्ण, वातकफनाशक एवं रक्तपित्तप्रशमन है। छाल स्तम्भन है। तेल स्तम्भन एवं व्रणरोपण है। पैत्तिक रोगों में पके फल का शरबत पिलाते हैं। अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी आदि में कोकम का फांट पिलाते हैं। इनमें पुटपाक करके निकाला पत्तों का रस भी देते हैं।

बरसात या शीतऋतु में हाथ-पैर फटते हैं उसमें इसका तेल गरम करके लगाते हैं।

अथ चतुरम्लं पञ्चाम्लं च। तयोर्लक्षणमाह

अम्लवेतसवृक्षाम्लबृहज्जम्बीरनिम्बुकैः। चतुरम्लं हि पञ्चाम्लं बीजपूरयुतैर्भवेत् ॥ १५० ॥

चतुरम्ल के लक्षण—अम्लवेतस, कोकम, जमीरी नीबू (बड़ा) और कागजी नीबू इन चारों के योग को 'चतुरम्ल' कहते हैं।

पञ्चाम्ल के लक्षण—यदि चतुरम्ल (अम्लवेतस, कोकम, जमीरी नीबू, कागजी नीबू) में बिजौरा नीबू का और योग कर दिया जाय तो "पञ्चाम्ल" हो जाता है ॥ १५० ॥

अथ परिभाषामाह

फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम्। बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम् ॥
फलेषु सरसं यत्स्याद् गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ १५१ ॥
द्राक्षाबिल्वशिवाऽऽदीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम्। फलतुल्यगुणं सर्वं मज्जानमपि निर्दिशेत्॥

फलं हिमाग्निदुर्वातव्यालकीटादिदूषितम्। अकालजं कुभूमीजं पाकातीतं न भक्षयेत् ॥१५३॥
***पाकातीतं = पाकमतिक्रम्य स्थितम् ॥ १५३ ॥**

फल विषयक परिभाषा—फलों में जो पका होता है वह कच्चे की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है किन्तु यह नियम बेल के फल के लिये नहीं है क्योंकि बेल का फल कच्चा ही अधिक गुणकारी होता है। फलों में जो सरस होता है वह सूखे की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है किन्तु दाख, बेल तथा हरड़ आदि के फल सूखे ही अधिक गुणकारी होते हैं। फल के गुण के समान उसकी मींगी के भी गुण समझना चाहिये। जो फल—पाला, अग्नि, आँधी, सर्प तथा कीड़े आदि से खराब हो गये हों तथा अकाल अथवा दुष्टभूमि में उत्पन्न हुये हों एवम् अधिक पक जाने से खराब हो गये हों उन्हें कभी नहीं खाना चाहिये ॥ १५१-१५३ ॥

यहाँ पर मूल में "पाकातीत" पद का "पकने की मर्यादा को लाँघ गये हों" अर्थात् अधिक पक जाने से खराब हो गये हों ऐसा अर्थ समझना चाहिये ॥ १५१-१५३ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे

सप्तम आम्रादिफलवर्गः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टमो धात्वादिवर्गोपरनामको धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः

तत्र धातूनां लक्षणानि गुणांश्चाह

तत्रादौ धातुसंख्यामाह

स्वर्णं रूप्यञ्च ताम्रं च रङ्गं यशदमेव च। सीसं लौहञ्च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवः॥ १॥

धातुओं की संख्या—सोना, चांदी, तांबा, रांगा, जस्ता, सीसा और लोहा ये सात ७ धातु पर्वत में उत्पन्न होने (खान से निकलने) वाले हैं॥ १॥

अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह

वलीपलितखालित्यकार्श्याबल्यजरामयान्। निवार्य देहं दधति नृणां तद्धातवो मताः॥ २॥

धातु शब्द की निरुक्ति—मनुष्यों के बली, पलित, खालित्य (शिर से बाल झड़जाना), कृशता, निर्बलता, बुढ़ापा, रोग इन सब को दूर करके जो देह को स्थिर (कार्य करने में समर्थ) रखते हैं वे "धातु" कहलाते हैं॥ २॥

तत्रादौ सुवर्णस्योत्पत्तिनामान्याह

पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम्। पत्नीर्विलोक्य लावण्यलक्ष्मीसम्पन्नयौवनाः॥
कन्दर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः। पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात्॥
कृत्रिमञ्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः॥ ४॥

सोने की उत्पत्ति—पहले एक समय जितेन्द्रिय सप्तर्षिगण अपने आश्रम में बैठे हुये थे, उस समय लावण्य तथा शोभा से पूर्ण यौवन वाली उनकी पत्नियों को देखकर कामदेव से जितेन्द्रियपने का अभिमान नष्ट हो जाने से (कामपीडित होने से) अग्निदेव का जो वीर्य स्खलित होकर धरातल पर पड़ा वही सोना हुआ अर्थात् तभी से सोने की उत्पत्ति हुई और पारे के वेध से कृत्रिम सोना भी होता है॥ ३-४॥

***मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। वसिष्ठश्चेति सप्तैते कीर्त्तिताः परमर्षयः॥३-४॥**

यहाँ पर मूल में "सप्तर्षि" पद से १ मरीचि, २ अङ्गिरा ३ अत्रि, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु ७ वशिष्ठ ये ७ परमर्षियों का बोध करना चाहिये॥ ३-४॥

स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम्॥ ५॥
तपनीयं च गाङ्गेयं कलधौतञ्च काञ्चनम्। चामीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरं च तत्॥६॥
जाम्बूनदं जातरूपं महारजतमित्यपि॥ ७॥

सोना के संस्कृत नाम—स्वर्ण, सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, गाङ्गेय, कलधौत, काञ्चन, चामीकर, शातकुम्भ, कार्त्तस्वर, जाम्बूनद, जातरूप तथा महारजत ये सब हैं॥ ५-७॥

अथोत्तमसुवर्णलक्षणमाह

दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम्। तारशुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत्॥८॥

उत्तम सुवर्ण के लक्षण—जो सुवर्ण तपाने में लाल, काटने में सफेद, कसौटी (कसने) में केशर के समान, चाँदी तथा तांबा से रहित, स्निग्ध, कोमल तथा तौल में भारी हो तो उसे उत्तम समझना चाहिये॥ ८॥

*सद् = उत्तमम्॥ ८॥

यहां पर मूल में "सत्" पद से "उत्तम" यह अर्थ समझना चाहिये॥ ८॥

अथ निकृष्टसुवर्णलक्षणमाह

तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम्। दाहे छेदेऽसितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम्॥

निकृष्ट सुवर्ण के लक्षण—जो सुवर्ण देखने में कुछ सफेद, कठिन, रूखा, खराब वर्णवाला, मैल के सहित, जोर वाला (गांठ के सदृश), तापने तथा काटने में काला, कसने में सफेद, तौल में हलका तथा घन की चोट से टूटने वाला हो उसे निकृष्ट समझ कर औषध के कार्य में त्याग कर देना चाहिये॥ ९॥

*दलं = "जोर" इति लोके। स्फुटं = यद्घनाहतं स्फुटति॥ ९॥

यहां पर मूल में "दल" पद का "जोर" यह लोक प्रसिद्ध अर्थ तथा "स्फुट" का 'घन की चोट से टूटने वाला' यह अर्थ समझना चाहिये॥ ९॥

अथ सम्यङ्मारितसुवर्णगुणानाह

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम्। स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम्॥
पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम्। हृद्यमायुष्करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत्।
विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित्॥ ११॥

अच्छे प्रकार से भस्म किया हुआ सुवर्ण—मधुर, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में मधुर, पिच्छिल, पवित्र, बृंहण (रस-रक्तादिवर्द्धक), नेत्र के लिये हितकर, शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, गुरु, रसायन, हृदय को हितकर, मेधा (धारणशक्ति), स्मृति, बुद्धि, आयु, कान्ति, वाणी की शुद्धि तथा स्थिरता को करने वाला एवम्–दोनों प्रकार के (स्थावर-जङ्गम) विष, क्षय, उन्माद, त्रिदोष, ज्वर तथा शोष को दूर करने वाला होता है॥ १०-११॥

अथासम्यङ्मारितसुवर्णदोषानाह

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजान् पोषयतीह काये।
असौख्यकृच्चापि सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात्॥ १२॥
असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलं वीर्यञ्च नाशयेत्।
करोति रोगान् मृत्युं च तद्धन्याद्यत्नतस्ततः॥ १३॥

ठीक से भस्म न किये हुये सुवर्ण के दोष–अशुद्ध सुवर्ण भस्म–मनुष्यों के बल तथा वीर्य को नष्ट करता है तथा शरीर में रोगों को पुष्ट करता है, सदा दुःख पहुंचाता है और अन्त में मृत्यु भी कर देता है। अच्छी तरह से बिना शोधे भस्म किया हुआ सुवर्ण— बल तथा वीर्य को नष्ट करता है एवम् रोग तथा मृत्यु को देता है अतएव यत्नपूर्वक उसकी भस्म बनानी चाहिये॥ १२-१३॥

अथ रूप्यम् । तस्योत्पत्तिमाह

**त्रिपुरस्य वधार्थाय निर्निमेषैर्विलोचनैः । निरीक्षयामास शिवः क्रोधेन परिपूरितः ॥ १४ ॥
अग्निस्तत्कालमपतत्तस्यकस्माद्विलोचनात् । ततो रुद्रः समभवद् वैश्वानर इव ज्वलन् ॥१५॥
द्वितीयादपतन्नेत्रादश्रुबिन्दुस्तु वामकात् । तस्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्मसु योजयेत् ॥ १६ ॥**

चांदी की उत्पत्ति—त्रिपुरासुर के वध के लिए क्रोध से युक्त होकर शिवजी निर्निमेष-दृष्टि से जब उसे देखने लगे तब उसी समय उनके एक नेत्र से अग्नि निकली उस से अग्नि के समान रुद्र भगवान् प्रज्वलित हो उठे, और दूसरे बायें नेत्र से आंसू की बूंदें निकलीं उन्हीं से चांदी की उत्पत्ति हुई, जिसका वैद्यक शास्त्रानुकूल कर्म में उपयोग लेना चाहिये ॥ १६ ॥

अथ कृत्रिमरूप्योत्पत्तिमाह

कृत्रिमं च भवेत्तद्धि वङ्गादिरसयोगतः ॥ १७ ॥

कृत्रिम (बनावटी) चांदी की उत्पत्ति—कृत्रिम चांदी उसे कहते हैं जोकि—वङ्ग आदि में पारा का योग करने से तैयार की जाती है ॥ १७ ॥

अथ रूप्यनामान्याह

रूप्यं तु रजतं तारं चन्द्रकान्ति सितप्रभम् ॥ १८ ॥

चांदी के संस्कृत नाम—रूप्य, रजत, तार, चन्द्रकान्ति तथा सितप्रभ ये सब हैं ॥ १८ ॥

अथोत्तमाधमयो रूप्ययोर्लक्षणान्याह

**गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम् । वर्णाढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नवगुणं शुभम् ॥
कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु । दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥**

उत्तम चांदी के लक्षण—जो चांदी तौल में भारी, स्निग्ध, कोमल, तपाने तथा काटने में सफेद, घन की चोट को सहने वाली अर्थात् टुकड़े २ न होने वाली, उत्तम वर्णवाली, चन्द्रमा के समान स्वच्छ कान्ति युक्त होती है अर्थात् इन नव गुणों से युक्त होती है वह उत्तम समझी जाती है ।

निकृष्ट चांदी के लक्षण—जो चांदी कठिन, कृत्रिम (बनावटी), रूक्ष, लाल, पीले दल (जोर) वाली, तौल में हल्की, तपाने, काटने तथा घन की चोट मारने पर जो अलग २ बिखर जाने वाली होती है वह खराब समझी जाती है ॥ १९ ॥

अथ सम्यङ्मारितरूप्यगुणानाह

**रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादुपाकरसं सरम् । वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् ।
प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद् ध्रुवम् ॥ २० ॥**

अच्छी तरह से शुद्धकर भस्म किये हुये चांदी के गुण—चांदी भस्म—कषाय, अम्ल तथा मधुर रस युक्त एवम्—विपाक में भी मधुर रस युक्त, शीतल, सारक, युवावस्था को स्थिर रखने वाला, स्निग्ध, लेखन एवम्—वात—पित्त तथा प्रमेहादि रोगों को शीघ्र तथा निश्चित रूपसे दूर करने वाला है ॥ २० ॥

अथासम्यङ्मारितरूप्यदोषानाह

**तारं शरीरस्य करोति तापं विध्वंसनं यच्छति शुक्रनाशम् ।
वीर्यं बलं हन्ति तनोश्च पुष्टिं महागदान्पोषयति ह्यशुद्धम् ॥ २१ ॥**

बिना अच्छी तरह से शोधी हुई एवम् कच्ची चांदी के भस्म के दोष—अशुद्ध चांदी शरीर को संतप्त तथा नष्ट करने वाली, शुक्रनाशक एवम्—शरीर के वीर्य, बल तथा पुष्टि को नष्ट करने वाली और महारोगों की वृद्धि करने वाली होती है ॥ २१ ॥

अथ ताम्रम् । तस्योत्पत्तिमाह

शुक्रं यत् कार्त्तिकेयस्य पतितं धरणीतले । तस्मात्ताम्रं समुत्पन्नमिदमाहुः पुराविदः ॥ २२ ॥

तांबा की उत्पत्ति—कार्त्तिकेय भगवान् का जो शुक्र पृथ्वीतल पर गिरा उसी से तांबे की उत्पत्ति हुई ऐसा पुराणज्ञ लोग कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ ताम्रनामान्याह

ताम्रमौदुम्बरं शुल्बमुदुम्बरमपि स्मृतम् । रविप्रियं म्लेच्छमुखं सूर्यपर्यायनामकम् ॥ २३ ॥

तांबा के संस्कृत नाम—ताम्र, औदुम्बर, शुल्ब, उदुम्बर, रविप्रिय, म्लेच्छमुख तथा सूर्य के पर्याय वाची (अर्क—तपन—अहस्कर—भास्कर इत्यादि सभी) शब्द ये सब हैं ॥ २३ ॥

अथोत्तमताम्रलक्षणान्याह

जपाकुसुमसङ्काशं स्निग्धं मृदु घनक्षमम् । लौहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥२४॥

उत्तम तांबा के लक्षण—भस्म करने के लिये वही तांबा उत्तम होता है जो कि—अड़ौल के फूल के समान लाल वर्ण वाला, स्निग्ध, कोमल, घन की चोट सहने वाला, लोहा तथा सीसा से रहित होता है ॥ २४ ॥

अथाधमताम्रलक्षणान्याह

कृष्णं रूक्षमतिस्तब्धं श्वेतञ्चापि घनासहम् । लौहनागयुतञ्चेति शुल्वं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥

निकृष्ट तांबा के लक्षण—जो तांबा—काला, रूखा, अत्यन्त कठिन, सफेद, घन की चोट न सहने वाला, लोहा तथा सीसा से युक्त होता है उसे निकृष्ट अर्थात् भस्म करने के अयोग्य समझना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ सम्यङ्मारितताम्रगुणानाह

**ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च ।
पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनञ्च ॥ २६ ॥
पाण्डूदरार्शोज्वरकुष्ठकासश्वासक्षयान् पीनसमम्लपित्तम् ।
शोथं क्रिमिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेतत् ॥ २७ ॥**

अच्छी प्रकार से भस्म किये हुये तांबे के गुण—उत्तम ताम्रभस्म—कषाय, मधुर, तिक्त तथा अम्लरस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त, सारक, पित्त तथा कफ नाशक, शीतल, रोपण (घाव भरने वाला), लघु, लेखन एवम्—पाण्डु तथा उदर रोग, अर्श, ज्वर, कुष्ठ, कास, श्वास, क्षय, पीनस, अम्लपित्त, शोथ, क्रिमि तथा शूलका नाश करने वाला होता है । और कोई २ इसे थोड़ा बृंहण (रस रक्तादिवर्धक) भी मानते हैं ॥ २६–२७ ॥

अथसम्यङ्मारितताम्रस्य दोषाष्टकमाह

एको दोषो विषे ताम्रेत्वसम्यङ्मारितेऽष्ट ते । दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छाक्लेदो रेको वमिर्भ्रमः ॥

अच्छे प्रकार से भस्म न किये हुये तांबे के आठ दोष—विष में तो केवल एक ही दोष है किन्तु

अच्छे प्रकार से भस्म न किये हुए तांबे में १ दाह, २ स्वेद (पसीना), ३ अरुचि, ४ मूर्च्छा ५ क्लेद (शरीर की आर्द्रता), ६ विरेचन, ७ वमन तथा ८ भ्रम का होना ये ८ दोष होते हैं अर्थात् उसके सेवन से उक्त दोष उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥

ॐ रेकः = विरेकः ॥ २८ ॥

यहां पर मूल में "रेक" पदसे विरेक अर्थात् विरेचन अर्थ समझना चाहिये ॥ २८ ॥

अथ रङ्गम् (रांगा)। तस्य नामानि भेदांश्चाह

रङ्गं वङ्गं त्रपु प्रोक्तं तथा पिच्चटमित्यपि। खुरकं मिश्रकं चापि द्विविधं वङ्ग मुच्यते ॥ २९ ॥
उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् ॥ ३० ॥

रांगा के संस्कृत नाम—रङ्ग, वङ्ग, त्रपु तथा पिच्चट ये सब हैं। रांगा के भेद-क्षुरक तथा मिश्रक ये दो भेद रांगा के होते हैं। इसमें "क्षुरक" उत्तम होता है एवम् "मिश्रक" निकृष्ट होता है ऐसा विद्वानों का मत है ॥ २९–३० ॥

अथ सम्यङ्मारितरङ्गगुणानाह

रङ्गं लघु सरं रूक्षमुष्णं मेहकफक्रिमीन्। निहन्ति पाण्डुं सश्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥
सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम्।
देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ३२ ॥

अच्छे प्रकार से भस्म किये हुये रांगे के गुण–रांगा का उत्तम भस्म–लघु, सारक, रूक्ष, उष्ण, नेत्रों के लिये हितकर, किञ्चित् पित्तजनक एवम्–प्रमेह, कफ, क्रिमि, पाण्डु और श्वास रोग को दूर करता है। और जिस प्रकार सिंह हाथियों के झुण्ड को नष्ट कर डालता है उसी प्रकार वंग (रांगा) भी सभी प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर डालता है। और देह सम्बन्धी सुख, इन्द्रियों की प्रबलता और पुष्टि ये सब सेवन करने वाले लोगों को निश्चित रूप से करता है ॥ ३१–३२ ॥

अथ यशदम् (जस्ता)। तस्य नामगुणानाह

यशदं रङ्गसदृशं रीतिहेतुश्च तन्मतम्। यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत्।
चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥ ३३ ॥

जस्ता के संस्कृत नाम—यशद, रङ्गसदृश और रीतिहेतु ये सब हैं।

जस्ता–कषाय तथा तिक्तरसयुक्त, शीतल, नेत्रों के लिये परम हितकर–एवम्–कफ–पित्त–समस्त प्रमेह–पाण्डु और श्वास को दूर करता है ॥ ३३ ॥

अथ सीसम्। तस्योत्पत्तिं नामानि चाह

दृष्ट्वा भोगिसुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोच यत्। वीर्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम्।
सीसं ब्रध्नं च वप्रं च योगेष्टं नागनामकम् ॥ ३५ ॥

सीसा की उत्पत्ति—एक समय वासुकिनामक सर्पराज का किसी सुन्दरी नागकन्या को देखकर कामपीड़ित होने से जो शुक्र स्खलित हुआ उसी से मनुष्यों के सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाले सीसे की उत्पत्ति हुई इसी से इसे "नाग" कहते हैं ॥

सीसा के संस्कृत नाम—सीस, ब्रध्न, वप्र, योगेष्ट और नागनामक (नाग के पर्यायवाची) शब्द, ये सब हैं ॥ ३४–३५ ॥

ॐ नागनामकम्=नागो भुजङ्ग इत्यादि ॥ ३५ ॥

यहां पर मूल में "नागनामक" पद से नाग के पर्यायवाची–नाग–भुजङ्ग–सर्प–उरग–द्विजिह्व इत्यादि सभी शब्द समझना चाहिये ॥ ३४–३५ ॥

अथ सीसस्य गुणानाह

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ३६ ॥
नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ३७ ॥

सीसा—सीसा गुणों में रांगा के समान ही है किन्तु विशेषतः यह प्रमेह नाशक होता है। और यदि निरन्तर सेवन किया जाय तो नाग (सीसा) सौ नाग (हाथी) के समान बल देता है, व्याधि नाश करता है, जीवन की वृद्धि करता है, जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, कामदेव सम्बन्धी बल को बढ़ाता है तथा मृत्यु को भी नष्ट करता है अर्थात् अनियत विपाक वाले मृत्यु से रक्षा करता है ॥ ३६–३७ ॥

अथाशुद्धवङ्गनागयोर्दोषानाह

पाकेन हीनौ किल वङ्गनागौ कुष्ठानि गुल्मांश्च तथाऽतिकष्टान्।
कण्डूप्रमेहानिलसादशोथभगन्दरादीन् कुरुतः प्रयुक्तौ ॥ ३८ ॥

अशुद्ध वंग (रांगा) तथा सीसा के दोष–भलीभांति से यदि भस्म न किये गये हों तो प्रयोग करने से रांगा तथा सीसा ये दोनों कुष्ठ–गुल्म, अत्यन्त कष्ट, खुजली, प्रमेह, वायुरोग, शरीर का अवसन्न होना, शोथ, भगन्दर, आदि रोगों को उत्पन्न करते हैं ॥ ३८ ॥

अथ लोहम्। तस्योत्पत्तिं नामानि चाह

पुरा लोमिलदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि। उत्पन्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥
लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी ॥ ३९ ॥

लोहा की उत्पत्ति—पहले समय में एक बार युद्ध में देवताओं द्वारा मारे हुये लोमिल नामक दैत्यों के शरीर से अनेक प्रकार के लोहा उत्पन्न हुये।

लोहा के संस्कृत नाम—लोह (यह स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर अन्य सभी लिङ्गों में होता है), शस्त्रक, तीक्ष्ण, पिण्ड, कालायस तथा अयस् ये सब हैं ॥ ३९ ॥

अथ लोहस्य सप्तदोषानाह

गुरुता दृढतोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता। अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसस्य तु ॥४०॥

लोहा के सात ७ दोष—गुरुता, दृढता, उत्क्लेद (वमन होने के समान मालूम होना), कश्मल (मूर्छा), दाह उत्पन्न करना, खान में रहने से पत्थर सम्बन्धी दोष, अत्यन्त दुर्गन्ध ये सब हैं ॥ ४० ॥

अथ लोहगुणानाह

लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु। रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ ४१ ॥
कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्शःप्लीहपाण्डुताः। मेदोमेहक्रिमीन् कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥४२॥

लोहा के गुण—लोहा-तिक्त-मधुर तथा कषायरस युक्त, सारक, शीतल, गुरु, रूक्ष, आयु को स्थिर रखने वाला, नेत्रों के लिये हितकर, लेखन गुण विशिष्ट, वातजनक एवम्-कफ-पित्त-विष-शूल-शोथ, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, मेद, प्रमेह, क्रिमि तथा कुष्ठ को दूर करनेवाला होता है। लोहा के किट्ट (मैल) के गुण—लोहकिट्ट के भी गुण लोहे के समान ही होते हैं ॥ ४२ ॥

अथाशुद्धलोहदोषानाह

षण्ढत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्हृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीञ्च।
नानारुजानाञ्च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥ ४३ ॥
जीवहारि मदकारि चायसं चेदशुद्धिमदसंस्कृतं ध्रुवम्।
पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाञ्च यच्छति ॥ ४४ ॥

अशुद्ध लोहा के दोष—नपुंसकता, कुष्ठरोग, मृत्यु, हृद्रोग, शूल, पथरी, अनेक प्रकार के रोगों का प्रकोप, हृल्लास (उबकाई) ये सब बिना शुद्ध किये हुये लोहे के भस्म के सेवन से होते हैं। और यदि लोहे का शोधन तथा संस्कार न किया गया हो तो उसका भस्म जीवन को नष्ट करने वाला, मदकारक, शरीर में फुर्तीपन का अभाव तथा हृदय में असह्य पीड़ा का करने वाला होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४३-४४ ॥

अथ लोहसेविनां त्याज्यपदार्थानाह

कूष्माण्डं तिलतैलञ्च माषान्नं राजिकां तथा। मद्यमम्लरसं चापि त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥४५॥

लोहा सेवन करने वाले लोगों के लिये त्याग करने योग्य पदार्थ—सफेद कोंहड़ा, तिल का तैल, उरद के बने हुये पदार्थ, राई, मद्य, अम्लरस युक्त पदार्थ (खटाई आदि), इन सब को लोह सेवन करने वाला व्यक्ति छोड़ देवे ॥ ४५ ॥

अथ सारलोहस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

क्ष्माभृच्छिखराकाराण्यङ्गान्यम्लेन लेपिते। लौहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ॥
लौहं साराह्वयं हन्याद् ग्रहणीमतिसारकम् ॥ ४६ ॥
अर्द्धं सर्वाङ्गजं वातं शूलं च परिणामजम्। छर्दिं च पीनसं पित्तं श्वासं कासं व्यपोहति ॥४७॥

सारलोह के लक्षण—जिस लोहे के ऊपर अम्ल (खट्टे पदार्थ) रस का लेपन करने से पर्वत के शिखर की भाँति आकारवाले सूक्ष्म २ अङ्ग उत्पन्न हो जायं उसे सारलोह समझना चाहिये।

सारलौह-ग्रहणी, अतिसार, अर्धाङ्ग तथा सर्वाङ्गवात, परिणामशूल, वमन, पीनस, पित्त, श्वास तथा कास को दूर करने वाला होता है ॥ ४६-४७ ॥

अथ कान्तलौहस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते-हिङ्गुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बवल्कः।
तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं-कृष्णाङ्गः स्यात् सजलचणकः कान्तलोहं तदुक्तम् ॥
गुल्मोदरार्शःशूलाममामवातं भगन्दरम्। कामलाशोथकुष्ठानि क्षयं कान्तमयो हरेत् ॥४९॥
प्लीहानमम्लपित्तञ्च यकृच्चापि शिरोरुजम् ॥ ५० ॥
सर्वान् रोगान् विजयते कान्तलोहं न संशयः। बलं वीर्यं वपुःपुष्टिं कुरुतेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥५१॥

कान्तलौह के लक्षण—जिस लोहे के पात्र में जल रखकर उसमें तेल का बूंद डालने से यदि वह न फैले, तथा जिसके तपाये पात्र में गरम करने से हींग अपने गन्ध को छोड़ दे, और नीम की छाल गरम करने से अपनी कड़वाहट को छोड़ दे, एवम् जिसमें दूध खौलाने से जोरों से उबाल आने पर भी वह भूमिपर न गिरे और जिसमें चने भिगोने से काले हो जायं उसे कान्तलौह समझना चाहिये।

कान्तलौह—गुल्म, उदररोग, अर्श, शूल, आम, आमवात, भगन्दर, कामला, शोथ, कुष्ठ, क्षय, प्लीहा, अम्लपित्त, यकृत तथा शिर के रोग इत्यादि सभी रोगों को निःसन्देह दूर करता है। और शरीर में बल, वीर्य की वृद्धि तथा पुष्टि करता है एवम् अग्निवर्द्धक होता है ॥ ४८-५१ ॥

अथ किट्टी। तस्या नामगुणानाह

ध्मायमानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते।
लोहसिंहानिका किट्टी सिंहानञ्च निगद्यते। यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टमपि तद्गुणम् ॥५२॥

किट्टी के लक्षण—लोह को अग्नि में धौंकाने से जो मल निकलता है उसे मण्डूर (किट्टी) कहते हैं। संस्कृत नाम-लोहसिंहानिका, किट्टी, सिंहान तथा मण्डूर ये सब हैं।

किट्टी-जिस लोहे के जो गुण हैं उसके मैल (किट्टी) के भी वे ही गुण होते हैं।

अथोपधातवः। तेषां संख्यामाह

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं तारमाक्षिकं। तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरञ्च शिलाजतुः ॥५३॥

उपधातुओं की संख्या—१ सोनामाखी, २ रूपामाखी, ३ तूतिया, ४ कांसा, ५ पीतल, ६ सिन्दूर, ७ शिलाजीत ये सात उपधातु हैं ॥ ५३ ॥

❀ उपधातवः-गौणा धातवः ॥ ५३ ॥

यहां पर "उपधातु" से "गौणधातु" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ५३ ॥

अथोपधातुष्वपि तत्तत्प्रधानधातुगुणाः स्वल्पमात्रया सन्तीत्याह

उपधातुषु सर्वेषु तत्तद्धातुगुणा अपि। सन्ति किन्त्वेषु ते गौणास्तत्तदंशाल्पभावतः ॥५४॥

उपर्युक्त सभी उपधातुओं में जिनके जो प्रधान धातु हैं उनके भी गुण उनमें रहते हैं किन्तु प्रधान के गुण गौणभाव से (थोड़ी मात्रा में ही) रहते हैं क्योंकि—धातु का अंश उपधातु में बहुत थोड़ा रहता है ॥ ५४ ॥

तत्र सुवर्णमाक्षिकम् (सोनामाखी)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

स्वर्णमाक्षिकमाख्यातं तापीजं मधुमाक्षिकम् ॥ ५५ ॥
ताप्यं माक्षिकधातुश्च मधुधातुश्च स स्मृतः। किञ्चित्सुवर्णसाहित्यात्स्वर्णमाक्षिकमीरितम् ॥
उपधातुः सुवर्णस्य किञ्चित्स्वर्णगुणान्वितम्। तथा च काञ्चनाभावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् ॥
किन्तु तस्यानुकल्पत्वात्किञ्चिदूनगुणास्ततः। न केवलं स्वर्णगुणा वर्त्तन्ते स्वर्णमाक्षिके ॥५८॥
द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः। सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥
चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरान्। अर्शः शोथं विषं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥६०॥

सोनामाखी के संस्कृत नाम—स्वर्णमाक्षिक, तापीज, मधुमाक्षिक, ताप्य, माक्षिकधातु और मधुधातु ये सब हैं।

सोनामाखी—थोड़े सोने की भी मिलावट होने से किंचित् सोने के गुणों से युक्त 'सोनामाखी' को सोने का उपधातु कहते हैं। तथा सोने के अभाव में इसे देते भी हैं किन्तु सोने का अनुकल्प होने से इसमें सोने की अपेक्षा कम गुण रहता है और इसमें केवल सोने के ही गुण नहीं रहते हैं किन्तु दूसरे भी द्रव्यों का संयोग होने से अन्यों के भी गुण रहते हैं। सोनामाखी मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), रसायन, नेत्रों के लिए हितकर एवम्–वस्ति (मूत्राशय) सम्बन्धी रोग, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, अर्श, शोथ, खुजली तथा त्रिदोषनाशक है ॥

अथाशुद्धसुवर्णमाक्षिकदोषानाह

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ।
तथैव मालां व्रणपूर्विकां च करोति तापीजमशुद्धमेतत् ॥ ६१ ॥

अशुद्ध सोनामाखी के दोष—यदि यह सोनामाखी शोधी हुई न हो तो अग्नि की मन्दता, बल की हानि, अत्यन्त विष्टम्भ, नेत्ररोग, कुष्ठ तथा व्रणमाला (कण्ठमाला) आदि रोगों को उत्पन्न करने वाली होती है ॥ ६१ ॥

अथ तारमाक्षिकम् (रूपामाखी) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

तारमाक्षिकमन्यत् तु तद्भवेद् रजतोपमम् । किञ्चिद्रजतसाहित्यात्तारमाक्षिकमीरितम् ॥६२॥
अनुकल्पतया तस्य ततो हीनगुणाः स्मृताः । न केवलं रूप्यगुणा यतः स्यात्तारमाक्षिकम् ॥
स्वादु पाके रसे किञ्चित्तिक्तं वृष्यं रसायनम् । चक्षुष्यं बस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरान् ।
अर्शः शोथं क्षयकण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥ ६४ ॥

रूपामाखी के संस्कृत नाम—तारमाक्षिक, रौप्यमाक्षिक आदि हैं।

रूपामाखी—दूसरा जो रूपामाखी है वह गुण में चाँदी के तुल्य ही होता है और कुछ चाँदी का संयोग होने से इसे 'रूपामाखी' कहते हैं। चाँदी का अनुकल्प होने से उसकी अपेक्षा इसके गुण स्वल्प होते हैं। और इसमें केवल चाँदी ही के गुण नहीं रहते हैं बल्कि दूसरे द्रव्यों का भी योग होने से औरों के भी गुण आ जाते हैं। रूपामाखी–विपाक में मधुर रसयुक्त तथा मधुर एवं किञ्चित् तिक्तरसयुक्त, वीर्यवर्धक, रसायन, नेत्रों के लिये हितकर एवम् वस्ति (मूत्राशय) सम्बन्धी रोग, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, अर्श, शोथ, क्षय, खुजली तथा त्रिदोष को दूर करता है ॥

अथाशुद्धतारमाक्षिकदोषानाह

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ।
तथैव मालां व्रणपूर्विकाञ्च करोति तापीजमिदञ्च तद्वत् ॥ ६५ ॥

अशुद्ध रूपामाक्षी के दोष—यह भी सोनामाखी की भाँति यदि शोधी हुई न हो तो अग्नि की मन्दता, बल की हानि, अत्यन्त विष्टम्भ, नेत्ररोग, कुष्ठ तथा व्रणमाला (गण्डमाला आदि) रोगों को उत्पन्न करती है ॥ ६५ ॥

अथ तुत्थम् (तूतिया) खर्परञ्च (खपरिया) तुत्थनामगुणान् खर्परगुणाँश्चाह

तुत्थं वितुन्नकं चापि शिखीग्रीवं मयूरकम् । तुत्थं ताम्रोपधातुर्हि किञ्चित्ताम्रेण तद्भवेत् ॥६६॥
किञ्चित्ताम्रगुणं तस्माद्वक्ष्यमाणगुणं च तत् । तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ॥६७॥
लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् । विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं खर्परं चापि तद्गुणम् ॥६८॥

तूतिया के संस्कृत नाम—तुत्थ, वितुन्नक, शिखिग्रीव तथा मयूरक ये सब हैं।

तूतिया—यह ताँबे का उपधातु है, इससे कुछ ताँबा का भी अंश इसमें रहता है अतः कुछ ताँबे के गुण और अन्य द्रव्यों के संयोग से आगे कहे हुए गुण इसमें होते हैं। तूतिया–कटु तथा कषायरस युक्त, क्षार, वमन कराने वाला, लघु, लेखन, मलभेदक, शीतल, नेत्रों के लिए हितकर, एवम् कफ-पित्त-विष-पथरी-कुष्ठ तथा खुजली को दूर करने वाला होता है। **खपरिया**—खपरिया भी तूतिया के समान गुण वाली होती है ॥ ६६–६८ ॥

अथ कांस्यम् (काँसा) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

ताम्रत्रपुजमाख्यातं कांस्यं घोषं च कंसकम् । उपधातुर्भवेत्कांस्यं द्वयोस्तरणिरङ्गयोः ॥६९॥
कांस्यस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशाजनैः । संयोगजप्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृता ॥
कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम् । गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम् ॥ ७१ ॥

काँसा के संस्कृत नाम—ताम्रत्रपुज, कांस्य, घोष तथा कंसक ये सब हैं।

काँसा—ताँबा तथा राँगा इन दोनों का उपधातु काँसा होता है। अतः अपनी उत्पत्ति का मूल-कारण ताँबा तथा राँगा के होनें से लोग काँसा को उपर्युक्त धातुओं (ताँबा तथा राँगा) के सदृश गुणवाला बतलाते हैं, अर्थात् जो ताँबा तथा राँगा के गुण हैं वे ही काँसा के भी होते हैं परन्तु स्वल्पमात्रा में, अन्य द्रव्यों का भी संयोग होने से अन्यों के भी गुण होते हैं। काँसा–कषाय तथा तिक्त रसयुक्त, उष्ण, लेखन, विशद गुणयुक्त, सारक, गुरु, नेत्रों के लिए हितकर, रूक्ष तथा कफ और पित्त का नाशक होता है ॥ ६९–७१ ॥

अथारकूटम् (पीतल–कच्चापीतल) । तस्यनामगुणानाह

पित्तलं स्वारकूटं स्यादारो रीतिश्च कथ्यते । राजरीतिर्ब्रह्मरीतिः कपिला पिङ्गलापि च ॥७२॥
रीतिरप्युपधातुः स्यात्ताम्रस्य यशदस्य च । पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः॥७३॥
संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥ ७४ ॥
रीतिकायुगलं रूक्षं तिक्तञ्च लवणं रसे । शोधनं पाण्डुरोगघ्नं क्रमिघ्नं नातिलेखनम् ॥ ७५ ॥

पीतल के संस्कृत नाम—पित्तल, आरकूट, आर एवं रीति हैं। इसके दूसरे भेद के नाम—राजरीति, ब्रह्मरीति, कपिला तथा पिङ्गला ये सब हैं।

पीतल—ताँबा तथा जस्ता का उपधातु है, इससे अपने मूलकारण (ताँबा तथा जस्ता) के सदृश ही इसके भी गुण लोगों ने बतलाये हैं। और अन्य द्रव्यों के संयोग से इसमें अन्यों के भी गुण रहते हैं। दोनों प्रकार के पीतल–तिक्त तथा लवण रसयुक्त, रूक्ष, शोधक, अत्यन्त लेखन नहीं अर्थात् किञ्चित् लेखन एवम्–पाण्डु और कृमिरोग के नाशक हैं ॥ ७२–७५ ॥

सिन्दूरम् । तस्य नामगुणानाह

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसजम् । सीसोपधातुः सिन्दूरं गुणैस्तत्सीसवन्मतम् ॥७६॥
संयोगजप्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृताः । सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम् ।
भग्नसन्धानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ७७ ॥

सिन्दूर के संस्कृत नाम—सिन्दूर, रक्तरेणु, नागगर्भ तथा सीसज ये सब हैं। सिन्दूर–सीसा का उपधातु सिन्दूर है, अतः सीसा के समान इसके भी गुण हैं, अन्य द्रव्यों के संयोग-प्रभाव से इसके

अन्य भी गुण होते हैं। सिन्दूर-उष्ण एवम् वीसर्प, कुष्ठ, खुजली तथा विष का नाशक है तथा टूटी अस्थियों को जोड़ने वाला, व्रण का शोधन और रोपण (पूरा) करने वाला होता है ॥७६-७७॥

अथ शिलाजतु (शिलाजीत) तस्योत्पत्तिं भेदान् नामानि गुणांश्चाह

निदाघे घर्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः। निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्त्तितम् ॥७८॥
सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं तच्चतुर्विधम्। शिलाजत्वद्रिजतु च शैलनिर्यास इत्यपि ॥७९॥
गैरेयमश्मजं चापि गिरिजं शैलधातुजम्। शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम् ॥८०॥
छेदि योगवहं हन्ति कफमे[1]हाश्मशर्कराः। मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातार्शांसि च पाण्डुताम् ॥
अपस्मारं तथोन्मादं शोथकुष्ठोदरक्रिमीन् ॥ ८२ ॥

शिलाजीत की उत्पत्ति—ग्रीष्म ऋतु में धूप से तप्त होकर पर्वत धातुओं के सार भाग को गोंद की भांति छोड़ते हैं अर्थात् पर्वतों पर गर्मी में जो धातुओं का सार पिघल कर पत्थरों से निकलता है—उसे "शिलाजीत" कहते हैं। भेद-१ सौवर्ण (सोने का), २ राजत (चांदी का), ३ ताम्र (तांबे का), ४ आयस (लोहेका) इस भांति शिलाजीत के ४ भेद हैं।

संस्कृत नाम—शिलाजतु, अद्रिजतु, शैलनिर्यास, गैरेय, अश्मज, गिरिज तथा शैलधातुज ये सब हैं।

शिलाजीत—कटु तथा तिक्त रस युक्त, पाक में कटु, रसायन, मलों का छेदन करने वाला, योगवाही एवम्-कफ, प्रमेह, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वादी बवासीर, पाण्डुरोग, अपस्मार, उन्माद, शोथ, कुष्ठ तथा उदर के क्रिमि इन सबों को नष्ट करने वाला होता है ॥७८-८२॥

अथ गुणलक्षणसहिताँस्तद्भेदानाह

सौवर्णं तु जपापुष्पवर्णं भवति तद्रसात्। मधुरं कटु तिक्तं च शीतलं कटुपाकि च ॥ ८३ ॥
राजतं पाण्डुरं शीतं कटुकं स्वादुपाकि च। ताम्रं मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णमुष्णं च जायते ॥८४॥
लौहं जटायुपक्षाभं सतिक्तं लवणं भवेत्। विपाके कटुकं शीतं सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ ८५ ॥

सौवर्ण (सोने का) शिलाजीत के लक्षण— यह जपा (अड़ोल) के पुष्प के समान लाल वर्ण का होता है। **सौवर्णशिलाजीत**-यह मधुर, कटु तथा तिक्त रस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त तथा शीतल होता है।

राजत (चांदी का) शिलाजीत के लक्षण— यह पाण्डुर वर्ण का होता है। **राजत शिलाजीत**-यह कटु रस युक्त, विपाक मे मधुर रस युक्त तथा शीतल होता है।

ताम्र (तांबे का) शिलाजीत के लक्षण— यह मयूर के कण्ठ के समान वर्ण वाला होता है। **ताम्रशिलाजीत**-यह तीक्ष्ण तथा उष्ण होता है।

लौह (लोहे का) शिलाजीत के लक्षण—यह जटायु (गिद्ध) के पक्ष के सदृश वर्ण वाला होता है। **लौह शिलाजीत**-यह तिक्त तथा लवण रसयुक्त, विपाक में कटु रस युक्त तथा शीतल होता है और यही सर्वश्रेष्ठ होता है ॥ ८३-८५ ॥

अथ रसः। तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिमाह

रसायनार्थिभिर्लोकैः पारदो रस्यते यतः। ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥

रस शब्द को निरुक्ति—रसायन को चाहने वाले लोग इस पारे का सेवन (भक्षण) करते हैं

१. मेदोश्मशर्कराः इति पाठा०।

इससे यह 'रस' कहलाता है। और शरीर का पोषण करने से 'धातु' भी कहलाता है अर्थात् रस तथा धातु पद से पारे का बोध किया जाता है ॥ ८६ ॥

अथ पारदः। तस्योत्पत्तिं भेदानाह

शिवाङ्गात्प्रच्युतं रेतः पतितं धरणीतले। तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमभूच्च तत् ॥८७॥
क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम्। श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत् तु भवेत्क्रमात् ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जातितः ॥ ८८ ॥
श्वेतं शस्तं रुजां नाशे रक्तं किल रसायने। धातुवादे तु तत्पीतं खे गतौ कृष्णमेव च ॥८९॥

पारे की उत्पत्ति—श्री शिवजी के अङ्ग से स्खलित होकर जो वीर्य पृथ्वी पर गिरा वही 'पारा' हुआ। और देह के सारभाग (वीर्य) से उत्पन्न होने से वह सफेद तथा स्वच्छ हुआ। भेद-क्षेत्र-भेद से शिववीर्य (पारा) चार प्रकार का होता है। जैसे—सफेद, लाल, पीला तथा काला और ये क्रम से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र ४ जाति के कहलाते हैं अर्थात् ब्राह्मण जाति का पारा सफेद वर्ण का, क्षत्रिय जाति का-लाल वर्ण का, वैश्य जाति का-पीले वर्ण का, और शूद्र जाति का-काले वर्ण का होता है। उपर्युक्त भेदों का उपयोग-सफेद वर्ण का पारा-रोगों के नाश करने में उत्तम होता है। लाल वर्ण का पारा-रसायन के कार्य में, पीले वर्ण का पारा-धातुवाद अर्थात् सोना चांदी आदि बनाने के कार्य में और काले वर्ण का पारा आकाश गमन के कार्य में उत्तम होता है ॥ ८७-८९ ॥

अथ पारदस्य नामगुणानाह

पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः ॥ ९० ॥
चपलः शिववीर्यश्च रसः सूतः शिवाह्वयः। पारदः षड्रसः स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥ ९१ ॥
योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः। सर्वामयहरः प्रोक्तो विशेषात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ ९२ ॥

पारा के संस्कृत नाम—पारद, रसधातु, रसेन्द्र, महारस, चपल, शिववीर्य, रस, सूत, शिवजी के नामवाचक सभी शब्द (जैसे-शिव, रुद्र, हर, धूर्जटि इत्यादि) ये सब हैं।

पारद—पारा मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त इन छ रसों से युक्त, स्निग्ध, त्रिदोष नाशक, रसायन, योगवाही, अत्यन्त वीर्यवर्धक, सदा नेत्रों की शक्ति तथा बल को देने वाला, सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला तथा विशेष रूप से कुष्ठ का नाशक होता है ॥ ९०-९२ ॥

अथ पारदस्यावस्थाभेदेन नामानि सर्वश्रेष्ठतां चाह

स्वस्थो रसो भवेद् ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो जनार्दनः। रञ्जितः [2]कामितश्चापि साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥
मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धनमनुभूय खे गतिं कुरुते।
अजरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाऽऽकरः सूतात् ॥ ९४ ॥
असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥
रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥ ९५ ॥

पारे का अवस्था भेद से नाम—स्वस्थ पारा-ब्रह्मा, बद्ध (बंधा हुआ) पारा-जनार्दन (विष्णु), रञ्जित तथा कामित पारा-साक्षात् महेश्वर संज्ञक होता है।

२. क्रामित इति पाठा०।

पारे की सर्वश्रेष्ठता—पारा—मूर्च्छित होकर रोगों को दूर करता है और बन्धन का अनुभव करके अर्थात् बद्धपारा—आकाश में चलने की शक्ति देता है और मरा हुआ होकर अर्थात् मृतपारा—मनुष्यों को अजर (वृद्धावस्थाशून्य) करता है, अतः पारे से बढ़ कर कोई दूसरा कृपासागर नहीं हो सकता है। मनुष्य, हाथी तथा घोड़ों के जो रोग असाध्य हो गये हों अथवा जिन रोगों की चिकित्सा नहीं हो सकती है ऐसे रोगों को केवल पारा ही दूर कर देता है ॥ ९३–९५ ॥

अथ फलनिर्देशपूर्वकं पारदस्थितदोषानाह

मलं विषं वह्निगिरित्वचापलं नैसर्गिकं दोषमुशन्ति पारदे ।
उपाधिजौ द्वौ त्रपुनागयोगजौ दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनीश्वरैः ॥ ९६ ॥
मलेन मूर्च्छा मरणं विषेण दाहोऽग्निना कष्टतरः शरीरे ।
देहस्य जाड्यं गिरिणा सदा स्युश्चाञ्चल्यतो वीर्यहृतिश्च पुंसाम् ।
वङ्गेन कुष्ठं भुजगेन षण्ढो भवेदतोऽसौ परिशोधनीयः ॥ ९७ ॥
वह्निर्विषं मलं चेति मुख्या दोषास्त्रयो रसे । एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं मूर्च्छां नृणां क्रमात् ॥९८॥
अन्येऽपि कथिता दोषा भिषग्भिः पारदे यदि । तथाऽप्येते त्रयो दोषा हरणीया विशेषतः ॥९९॥

पारे के स्वाभाविक दोष—मल, विष, अग्नि, गिरिदोष, चपलता ये सब हैं और आगन्तुक दोष—रांगा और सीसा के योग से होने वाले अन्य दो हैं। इस भाँति से पारे के सब ७ दोष मुनीश्वरों ने कहे हैं।

उक्त दोषों के फल—मल से मूर्च्छा, विष से मरण, अग्नि से शरीर में अत्यन्त कष्टकर दाह, गिरि से सदा शरीर की जड़ता, चपलता से पुरुषों का वीर्यनाश, वङ्ग (रांगा) से कुष्ठ, भुजग अर्थात् नाग से नपुंसकता ये सब क्रम से होते हैं। अतः पारे का शोधन उक्त दोष की निवृत्ति के लिये परमावश्यक है। मुख्यरूप से तो पारा में—१ अग्नि—२ विष तथा ३ मल ये ही तीन दोष होते हैं। ये तीनों क्रम से मनुष्यों को १ सन्ताप—२ मरण—३ मूर्च्छा करने वाले होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी दोष यद्यपि पारे में ऋषियों ने कहे हैं तथापि पारे के ये ३ दोष ही विशेषरूप से दूर करने योग्य हैं ॥ ९७–९९ ॥

अथासंस्कृतपारदसेवननिषेधमाह

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम् ।
देहस्य नाशं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ १०० ॥

असंस्कृत पारे के सेवन का निषेध—जो कोई बिना संस्कार किये हुये ही पारे का सेवन करता है तो वह उस (सेवन करने वाले) को पीड़ा पहुंचाता है, देह का नाश कर देता है, निश्चित रूप से मनुष्यों के रोगों को उत्पन्न करता है। तात्पर्य यह है कि भूल कर भी असंस्कृत पारे का सेवन नहीं करना चाहिये अन्यथा कष्टाधिक्य से मृत्यु तक हो जाती है ॥ १०० ॥

अथोपरसाः । तेषां संख्यामाह

गन्धो हिङ्गुलमभ्रतालकशिलाः स्रोतोऽञ्जनं टङ्कणं
राजावर्तकचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खः खटी गैरिकम् ।
कासीसं रसकं कपर्दसिकताबोलाश्च कुङ्कुष्ठकं
सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ १०१ ॥

उपरसों की संख्या—गन्धक, हिङ्गुल, अभ्रक, हरताल, मैनशिल, सुरमा, सुहागा, राजावर्तक, चुम्बक, फिटकरी, शंख, खरिया, गेरू, कसीस, खपरिया, कौड़ी, बालु, बोल, कङ्कुष्ठ एवं सोरठी माटी ये सब उपरस कहे जाते हैं क्योंकि ये कुछ रस (पारा) के गुणों से युक्त होते हैं ॥ १०१ ॥

अथ हिङ्गुलम् । तस्य नामानि सलक्षणभेदान् गुणांश्चाह

हिङ्गुलं दरदं म्लेच्छमिङ्गुलं च चूर्णपारदम् । दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चर्मारः शुकतुण्डकः ॥ १०२ ॥
हंसपादस्तृतीयः स्याद् गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ १०३ ॥
चर्मारः शुक्लवर्णः स्यात्स पीतः शुकतुण्डकः । जपाकुसुमसङ्काशो हंसपादो महोत्तमः ॥१०४॥
तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि ।
हृल्लासकुष्ठज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ १०५ ॥

हिङ्गुल के संस्कृत नाम—हिङ्गुल, दरद, म्लेच्छ, इङ्गुल और चूर्णपारद ये सब हैं। भेद—हिङ्गुल तीन प्रकार का होता है। १ चर्मार, २ शुकतुण्डक, ३ हंसपाद। इनमें से एक दूसरे की अपेक्षा उत्तरोत्तर गुणवान् होता है जैसे—चर्मार की अपेक्षा शुकतुण्ड और शुकतुण्ड की अपेक्षा हंसपाद अधिक गुणवान् होता है ॥

उक्त भेदों के लक्षण—चर्मार-सफेद वर्ण का होता है, शुकतुण्ड-पीले वर्ण का एवम् हंसपाद जो कि सर्वोत्तम है वह जपाकुसुम (अड़ौल के फूल) के समान लाल वर्ण का होता है।

हिङ्गुल—तिक्त, कषाय, कटुरस युक्त एवम्—नेत्रसंबन्धी—रोग, कफ, पित्त, हृल्लास (उबकाई), कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात और विष को दूर करने वाला होता है ॥

अथ हिङ्गुलोत्थं पारदं शुद्धमित्याह

ऊर्ध्वपातनयुक्त्या तु डमरुयंत्रपाचितम् । हिङ्गुलं तस्य सूतं तु शुद्धमेव न शोधयेत् ॥

हिंगुल से निकाले हुये पारे की शुद्धि की अनावश्यकता—ऊर्ध्वपातन की युक्ति से डमरूयन्त्र में पकाया हुआ जो हिंगुल है, उससे निकाला हुआ जो पारा है वह स्वयं शुद्ध होता है अतः उसकी पुनः शुद्धी करने की आवश्यकता नहीं रहती है ॥ १०६ ॥

अथ गन्धकः । तस्योत्पत्तिं नामानि भेदांश्चाह

श्वेतद्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्या रजसाऽऽप्लुतम् । दुकूलं तेन वस्त्रेण स्नातायाः क्षीरनीरधौ ॥
प्रसृतं यद्रजस्तस्माद् गन्धकः समभूत्ततः । गन्धको गन्धिकश्चापि गन्धपाषाण इत्यपि ॥१०८॥
सौगन्धिकश्च कथितो बलिर्बलरसोऽपि च । चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः ॥

गन्धक की उत्पत्ति—पहले एक समय श्वेतद्वीप में क्रीड़ा करती हुई श्री पार्वती जी का वस्त्र रजोधर्म होने से रज से भीग गया तब उसी समय क्षीर समुद्र में स्नान करने से जो रज इधर उधर फैला उसी से गन्धक की उत्पत्ति हुई। गन्धक के संस्कृत नाम—गन्धक, गन्धिक, गन्धपाषाण, सौगन्धिक, बलि तथा बलरस ये सब हैं।

भेद—गन्धक ४ प्रकार का होता है। १ रक्तवर्ण का, २ पीत वर्ण का, ३ श्वेत वर्ण का, ४ कृष्णवर्ण का होता है ॥ १०७–१०९ ॥

अथ गन्धकभेदानामुपयोगविषयानाह

रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने। व्रणादिलेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥११०॥

गन्धक के उक्त भेदों के उपयोग—रक्तवर्ण का गन्धक-सोना बनाने के कार्य में उपयुक्त होता है, पीत वर्ण का गन्धक-रसायन के कार्य में आता है, श्वेत वर्ण का गन्धक-व्रण आदि के ऊपर लेप करने के लिये उपयोगी होता है एवं कृष्णवर्ण का गन्धक-पूर्वोक्त सभी कार्यों में में श्रेष्ठ होता है किन्तु यह अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ ११० ॥

***श्रेष्ठः = हेमक्रियाऽऽदिषु सर्वत्र प्रशस्ततरः ॥ ११० ॥**

यहाँ पर "श्रेष्ठ" पद से "हेमक्रिया (सोना बनाने) आदि पूर्वोक्त सभी कार्यों में अत्यन्त प्रशस्त होता है" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ११० ॥

अथ गन्धकगुणानाह

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः। पित्तलः कटुकः पाके जन्तुकण्डूविसर्पजित्।
हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान् रसायनः ॥ १११ ॥

गन्धक—कटु, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, उष्णवीर्य, सारक, पित्तजनक, रसायन एवम्-क्रिमि, खुजली, विसर्प, कुष्ठ, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ १११ ॥

अथाशुद्धगन्धकदोषानाह

अशोधितो गन्धक एव कुष्ठं करोति तापं विषमं शरीरे।
सौख्यं च रूपं च बलं तथौजः शुक्रं निहन्त्येव करोति चास्रम् ॥ ११२ ॥

अशुद्ध गन्धक के दोष—बिना शोधा हुआ गन्धक यदि भक्षण किया जाय तो वह कुष्ठ, शरीर में विषम ज्वर तथा रक्तविकार को करता है एवम्—सुख, रूप, बल, ओज एवं शुक्र को नष्ट करता है ॥ ११२ ॥

अथाभ्रकम्। तस्योत्पत्तिमाह

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम्। विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः ॥११३॥
ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम्। तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम् ॥११४॥
तद्वज्रं वज्रजातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात्। गगनात्स्खलितं यस्माद्गगनं च ततो मतम् ॥ ११५ ॥

अभ्रक की उत्पत्ति—पहले एक समय जब इन्द्र ने वृत्रासुर के वध के लिए वज्र उठाया तब उससे उसकी चिनगारियाँ निकल कर आकाश में फैल गईं। और उसके बाद वे सब मेघ का शब्द होने पर पर्वतों के शिखरों पर जाकर गिर पड़ीं और जिन २ पर्वतों पर वे गिरी थीं उन्हीं २ पर्वतों पर उन चिनगारियों से अभ्रक की उत्पत्ति हुई।

अभ्रक के कतिपय नामों के पड़ने का हेतु—वज्र से उत्पन्न होने से इसे 'वज्र', अभ्र अर्थात् मेघ के शब्द होने से उत्पत्ति हुई अतः 'अभ्रक' और गगन अर्थात्—आकाश से गिरा अतएव इसे 'गगन' भी कहते हैं ॥ ११३–११५ ॥

अथाभ्रकभेदाँस्तेषामुपयोगविषयानाह

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तस्याच्चतुर्विधम्। क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः ॥११६॥
प्रशस्यते सितं तारे रक्तं तत्तु रसायने। पीतं हेमनि कृष्णं तु गदेषु द्रुतयेऽपि च ॥११७॥

अभ्रक के भेद—१ ब्राह्मण-२ क्षत्रिय, ३ वैश्य तथा ४ शूद्र ये ४ जातियाँ अभ्रक की होती हैं। उनके जाति वर्ण—क्रम से अर्थात् ब्राह्मण जाति का अभ्रक सफेद रङ्ग का, क्षत्रिय जाति का लाल रंग का, वैश्य जाति का पीले रंग का और शूद्र जाति का काले रंग का होता है।

उक्त भेदों के उपयोग—चाँदी बनाने के कार्य में सफेद अभ्रक का, रसायन के कार्य में लाल अभ्रक का, सोना बनाने में पीले अभ्रक का और रोग नष्ट करने में काले अभ्रक का उपयोग किया जाता है ॥ ११६–११७ ॥

अथाभ्रकस्यान्यानपि भेदाँल्लक्षणगुणनिर्देशपूर्वकमाह

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति चतुर्विधम्। मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसञ्चयम् ॥११८॥
अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठप्रदायकम्। दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम् ॥ ११९ ॥
गोलकान्बहुशः कृत्वा स स्यान्मृत्युप्रदायकः। नागं तु नागवद्वह्नौ फूत्कारं परिमुञ्चति ॥
तद्भक्षितमवश्यं तु विदधाति भगन्दरम्। वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठेत्तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥१२१॥
सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युहृत् ॥ १२२ ॥

अभ्रक के और भी भेदों के नाम—१ पिनाक, २ दर्दुर, ३ नाग, ४ वज्र, ये ४ भेद अभ्रक के हैं। उक्त भेदों के लक्षण—पिनाक नामक अभ्रक के लक्षण—अग्नि में डाल देने पर जिससे परत निकल-निकल कर अलग होने लगें उसे 'पिनाक' समझना चाहिये।

पिनाक—यदि अज्ञान से खा लिया जाय तो महाकुष्ठ हो जाता है।

दर्दुर के लक्षण—जो अग्नि में छोड़ने पर मेंढक की भाँति शब्द करे वह 'दर्दुर' कहलाता है। दर्दुर-इसे खा लेने से शरीर में बहुत सी गाँठों की उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

नागनामक अभ्रक के लक्षण अग्नि में डालने पर जिससे साँप के समान फुंकार निकले उसे 'नाग' समझना चाहिये। नाग-इसके खाने से भगन्दर अवश्य हो जाता है।

वज्र के लक्षण—जो कि अग्नि में डालने पर किसी तरह की विकृति को न प्राप्त होकर वज्र की भाँति स्थिर रहता है वह "वज्र" नामक अभ्रक कहलाता है। वज्र-सम्पूर्ण अभ्रकों में वज्र नामक ही अभ्रक सर्वश्रेष्ठ होता है, क्योंकि यह रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु को भी दूर करने वाला होता है ॥ ११८–१२२ ॥

अथोत्पत्तिस्थानाभेदेनाभ्रकस्य गुणभेदानाह

अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणाधिकम्। दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणप्रदम् ॥ १२३ ॥

उत्पत्ति स्थान के भेद से अभ्रक के गुणों में भेद—उत्तर के पर्वतों पर उत्पन्न होने वाला अभ्रक—अत्यन्त वीर्यशाली अतएव अधिक गुणकारी होता है और दक्षिण के पर्वतों पर उत्पन्न होने वाला अभ्रक—स्वल्प वीर्यवाला अतएव स्वल्प गुणकारी होता है ॥ १२३ ॥

अथ मृताभ्रकगुणानाह

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनं च।
हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठप्लीहोदरग्रन्थिविषक्रिमींश्च ॥ १२४ ॥

रोगान्हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव।
दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान्विक्रमैःसिंहतुल्यान् मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥

अभ्रक भस्म (मृत अभ्रक)—यह कषाय तथा मधुर रसयुक्त, अत्यन्त शीतल, आयु को बढ़ाने वाला, धातुवर्धक एवम्–त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, ग्रन्थि (गिल्टी), विष तथा क्रिमि को दूर करने वाला होता है।

यदि मृत अभ्रक (अभ्रक भस्म) का नित्य सेवन किया जाय तो वह– रोगों को दूर करता है तथा शरीर को दृढ़ और वीर्य की वृद्धि करता है और नित्य तरुणाई से भरा हुआ सौ स्त्रियों से रमण करने की शक्ति देता है तथा सिंह के समान पराक्रमी, दीर्घ आयु वाले पुत्रों को उत्पन्न करता है और मृत्यु के भय को दूर करता है ॥ १२४–१२५ ॥

अथाशुद्धाभ्रकदोषानाह

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोथम्।
हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं त्वसिद्धं गुरु तापदं स्यात् ॥ १२६ ॥

अशुद्ध अभ्रक के दोष—विना शोधन किया हुआ अभ्रक– सेवन करने से मनुष्यों को अनेक प्रकार की पीड़ा करता है एवम्—कुष्ठ, क्षय, पाण्डुरोग, शोथ, हृदय तथा पार्श्व (पसुली) में पीड़ा करता है।

असिद्ध अभ्रक के दोष— यदि अभ्रक भस्म असिद्ध (कच्ची) हो तो सेवन करने से अत्यन्त ताप देने वाला होता है ॥ १२६ ॥

अथ हरितालम्। तस्य गुणलक्षणसहितान् भेदान् गुणाँश्चाह

हरितालं तु तालं स्यादालं तालकमित्यपि। हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिण्डसंज्ञकम् ॥
तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणं परम्। स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् ॥१२८॥
पत्राख्यं तालकं विद्याद् गुणाढ्यं तद्रसायनम्। निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु ॥
स्त्रीपुष्पहारकं स्वल्पगुणं तत्पिण्डतालकम्। हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्।
कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान् ॥ १३० ॥

हरताल के संस्कृत नाम–हरिताल, ताल, आल और तालक ये सब हैं। भेद—हरताल दो प्रकार का होता है। १ पत्राख्य (तबकिया) हरताल, २ पिण्डसंज्ञक हरताल। इन में से पहला जो पत्राख्य (तबकिया) हरताल है वह गुणों में श्रेष्ठ होता है और दूसरा जो पिण्डसंज्ञक हरताल है वह हीन गुणवाला होता है। पत्राख्य (तबकिया) हरताल के लक्षण–सोने के समान वर्ण वाला, गुरु, स्निग्ध, अभ्रक के पत्र के समान पत्रवाला जो पत्राख्य (तबकिया) हरताल होता है, वह गुणों से युक्त तथा रसायन होता है। और जो पत्र से रहित पिण्ड के समान पिण्डहरताल होता है, वह स्वल्प वीर्यशाली, गुरु, स्त्री के पुष्प को नष्ट करने वाला एवं अल्प गुणयुक्त होता है। हरताल— कटु तथा कषाय रसयुक्त, स्निग्ध, उष्ण होता है एवम्–विष, खुजली, कुष्ठ, मुख के रोग, रक्तविकार, कफ, पित्त, केश तथा व्रण (घाव) को नष्ट करनेवाला होता है ॥ १२७–१३० ॥

अथाशुद्धस्यासम्यङ्मारितस्य च हरितालस्य दोषानाह

हरति च हरितालं चारुतां देहजातां सृजति च बहुतापञ्चाङ्गसङ्कोचपीडाम्।
वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्या दिदमशितमशुद्धं मारितं चाप्यसम्यक ॥ १३१ ॥

विना शोधा हुआ दोनों प्रकार का हरताल—भक्षण करने से शरीर की सुन्दरता को दूर करता है, अत्यन्त ताप को उत्पन्न करता है, अङ्गों में सङ्कोच की पीड़ा देता है एवम्—कफ, वात तथा कुष्ठ को करता है ॥ १३१ ॥

अथ मनःशिला (मैनसिल)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका। नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥
मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः। तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत् ॥

मैनशिल के संस्कृत नाम— मनःशिला, मनोगुप्ता, मनोह्वा, नागजिह्विका, नैपाली, कुनटी, गोला, शिला तथा दिव्यौषधि ये सब हैं।

मैनशिल—यह कटु तथा तिक्त रसयुक्त, गुरु, शरीर के वर्ण को उत्तम बनाने वाली, सारक, उष्ण, लेखन तथा स्निग्ध होती है एवम्—विष, श्वास, कास, भूतबाधा, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है ॥ १३२–१३३ ॥

अथाशुद्धायास्तस्यादोषानाह

मनः शिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण।
मलानुबन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात् ॥ १३४ ॥

अशुद्ध मैनशिल के दोष—विना शोधी हुई मैनशिल–सेवन करने वाले मनुष्य के बल को मन्द करने वाली तथा मल का अनुबन्ध (दस्त की रुकावट), मूत्ररोध और शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्र रोग को पैदा करती है ॥ १३४ ॥

अथ स्रोतोऽञ्जनं सौवीरं च (काला, सफेद सुरमा)। तयोर्नामलक्षणगुणानाह

अञ्जनं यामुनंचापि कापोताञ्जनमित्यपि। तत्तु स्रोतोऽञ्जनं कृष्णं सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥
वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम्। घृष्टं तु गैरिकाकारमेतत्स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥
स्रोतोऽञ्जनसमं ज्ञेयं सौवीरं तत्तु पाण्डुरम्। स्रोतोऽञ्जनं स्मृत स्वादु चक्षुष्यं कफपित्तनुत् ॥
कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि च्छर्दिविषापहम्। सिध्मक्षयास्रहृच्छीतं सेवनीयं सदा बुधैः ॥
स्रोतोऽञ्जनगुणाः सर्वे सौवीरेऽपिमता बुधैः। किन्तु द्वयोरञ्जनयोः श्रेष्ठं स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥

सुरमा के साधारण संस्कृत नाम—अञ्जन, यामुन तथा कापोताञ्जन ये सब हैं।

भेद और उनके लक्षण– सुरमा में जो काला होता है उसे संस्कृत में "स्रोतोऽञ्जन" कहते हैं और जो सफेद होता है उसे "सौवीर" कहते हैं। लक्षण—स्रोतोऽञ्जन (काला सुरमा)—यह वल्मीक (बांबी) के शिखर के समान आकारवाला, तोड़ने पर अञ्जन के टुकड़ों के समान एवं घिसने पर "गेरू" के समान होता है।

सौवीर (सफेद सुरमा)—यह पाण्डुर वर्ण का तथा गुणों में काले सुरमे के समान ही होता है।

काला सुरमा—स्वादिष्ट, कषाय रसयुक्त, नेत्रों के लिये हितकर, लेखन, स्निग्ध, ग्राही, तथा शीतल होता है एवम्—कफ, पित्त, वमन, विष, सिध्म (क्षुद्रकुष्ठ के भेद), क्षय, तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है। अतएव बुद्धिमानों को सदा इसे सेवन करना चाहिये। काले सुरमे में जो गुण हैं वे ही सब सफेद सुरमे में भी रहते हैं ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

किन्तु इन दोनों अञ्जनों में श्रेष्ठ 'स्रोतोऽञ्जन' काला सुरमा ही समझा जाता है ॥१३५–१३९॥

अथ टङ्कणः (सोहागा) । तस्य गुणानाह

टङ्कणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो वातपित्तकृत् ॥ १४० ॥

सुहागा—अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक तथा वात और पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १४० ॥

※ अयमुपरसत्वात् पुनरुक्तः ॥ १४० ॥

यहाँ पर यह समझना चाहिये कि—यह उपरस होने से पुनः यहाँ पर कहा गया है ॥ १४० ॥

अथ स्फटिका (फटकिरी) । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता शुभ्रा च रङ्गदा । दृढरङ्गा रङ्गदृढा रङ्गाङ्गाऽपि च कथ्यते ॥
स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्तकफव्रणान् । निहन्ति श्वित्रवीसर्पान् योनिसङ्कोचकारिणी ॥

फटकिरी के संस्कृत नाम—स्फटी, स्फटिका, श्वेता, शुभ्रा, रङ्गदा, दृढरङ्गा, रङ्गदृढा, रङ्गाङ्गा ये सब हैं।

फिटकिरी—कषाय रस युक्त, उष्ण, योनिमार्ग को संकुचित करने वाली एवम्—वात, पित्त, कफ, व्रण (घाव), श्वेत कुष्ठ तथा विसर्प को दूर करने वाली होती है ॥ १४१–१४२ ॥

अथ राजावर्त्तः (रेवटी) । तस्य नामगुणानाह

राजावर्त्तो नृपावर्त्तो राजन्यावर्त्तकस्तथा । आवर्त्तमणिसंज्ञश्च ह्यावर्त्तोऽपि तथैव च ॥१४३॥
राजावर्त्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्तनाशनः । राजावर्त्तः प्रमेहघ्नश्छर्दिहिक्कानिवारणः ॥१४४॥

रेवटी के संस्कृत नाम—राजावर्त्त, नृपावर्त्त, राजन्यावर्त्तक, आवर्त्तमणिसंज्ञक, आवर्त्त (आवर्त्तक) ये सब हैं। राजावर्त्त-कटु तथा तिक्त रसयुक्त, शीतल, पित्तनाशक एवम्—प्रमेह, वमन तथा हिचकी को दूर करने वाली होती है ॥ १४३–१४४ ॥

अथ चुम्बकः । तस्य नामगुणानाह

चुम्बकः कान्तपाषाणोऽयस्कान्तो लोहकर्षकः । चुम्बको लेखनः शीतो मेदोविषगरापहः ॥

चुम्बक के संस्कृत नाम—चुम्बक, कान्तपाषाण, अयस्कान्त और लोहकर्षक ये सब हैं।

चुम्बक—लेखन, शीतल तथा मेद, विष और गर (उपविष) को नष्ट करने वाला होता है। यहाँ पर-नानाप्राण्यङ्गजमलविरुद्धौषधभस्मनाम् । विषाणाञ्चाल्पवीर्याणां योगो गर इति स्मृतः ॥ १ ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के प्राणियों के अङ्गों का मल, विरुद्ध औषधों के भस्म, अल्पवीर्य वाले विषों के परस्पर योग को 'गर' कहते हैं। यह गर का विशेष अर्थ समझना चाहिये ॥ १४५ ॥

अथ गैरिकं सुवर्णगैरिकं च (गेरू-सोनागेरू) । तयोर्नामगुणानाह

गैरिकं रक्तधातुश्च गैरेयं गिरिजं तथा । सुवर्णगैरिकं त्वन्यत्ततो रक्ततरं हि तत् ॥ १४६ ॥
गैरिकद्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम् । चक्षुष्यं दाहपित्तास्रकफहिक्काविषापहम् ॥ १४७ ॥

गेरू के संस्कृत नाम—गैरिक, रक्तधातु, गैरेय, गिरिज ये सब हैं।

गेरू के भेद—गेरू से भिन्न एक प्रकार का और भी गेरू होता है जो इसकी अपेक्षा अत्यन्त लाल रङ्ग का होता है उसे संस्कृत में 'स्वर्णगैरिक' कहते हैं। दोनों गेरू (गेरू-

सोना गेरू)—यह मधुर तथा कषाय रस युक्त, स्निग्ध, शीतल, नेत्रों के लिये हितकर एवम्-दाह-पित्त-रक्तविकार-कफ-हिचकी तथा विष इन सबों को दूर करने वाले होते हैं ॥ १४६–१४७ ॥

अथ खटिका गौरखटिका च (खड़िया, गौरखरिया) । तयोर्नामगुणानाह

खटिका कठिनी चापि लेखनी च निगद्यते । खटी दाहास्रजिच्छीता मधुरा विषशोथजित् ॥
लेपादेतद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा । खटी गौरखटी द्वे च गुणैस्तुल्ये प्रकीर्त्तिते ॥

खड़िया के संस्कृत नाम—खटिका, कठिनी तथा लेखनी ये सब हैं।

खड़िया—मधुर रस युक्त, शीतल एवम्-दाह-रक्तविकार-विष तथा शोथ को दूर करने वाली होती है। लेप करने से ही उक्त गुण खड़िया के ज्ञात होते हैं। खाने पर तो मिट्टी के समान गुण वाली होती है। खड़िया तथा गौर खरिया ये दोनों ही-गुणों में समान ही मानी जाती हैं ॥

अथ वालुका (बालू) । तस्या नामगुणानाह

वालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजाऽपि च । वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षतनाशिनी ॥

बालू के संस्कृत नाम—वालुका, सिकता, शर्करा और रेतजा ये सब हैं।

बालू—लेखन, शीतल तथा व्रण और उरःक्षत को दूर करने वाली होती है ॥ १५० ॥

अथ तुत्थभेदः खर्परी (खपरिया) तस्या नामगुणानाह

खर्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत्तद्रसकं स्मृतम् । ये गुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः ॥

खपरिया के संस्कृत नाम—खर्परी, तुत्थक, रसक, तुत्थभेद ये सब हैं।

खपरिया—जो गुण तूतिया के कहे हुये हैं वे ही सब इसके भी होते हैं ॥ १५१ ॥

अथ काशीशम् (कसीस) । तस्य नामानि भेदान् गुणाँश्चाह

काशीशं धातुकाशीशं पांशुकाशीशमित्यपि । तदेव किञ्चित्पीतं तु पुष्पकाशीशमुच्यते ॥ १५२॥
काशीशमम्लमुष्णं च तिक्तञ्च तुवरं तथा । वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकण्डूविषप्रणुत् ॥
मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥ १५३ ॥

कसीस के संस्कृत नाम—काशीश, धातुकाशीश, पांशुकाशीश ये सब हैं। भेद—कसीस यदि थोड़ा पीला हो तो उसका संस्कृत नाम—पुष्पकाशीश होता है। कसीस-अम्ल, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, उष्ण (गरम), बालों के लिये हितकर, वात, कफ, नेत्रों की खुजली, विष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी तथा श्वेत कुष्ठ को दूर करने वाला होता है ॥ १५२–१५३ ॥

अथ सौराष्ट्री मृत्तिका (सोरठी माटी) । तस्या नामगुणानाह

सौराष्ट्री तुवरी काली मृत्तालकसुराष्ट्रजे ॥ १५४ ॥
आढकी चापि सा ख्याता मृत्स्ना च सुरमृत्तिका । स्फटिकाया गुणाः सर्वे सौराष्ट्र्या अपि कीर्त्तिताः

सोरठी माटी के संस्कृत नाम—सौराष्ट्री, तुवरी, काली, मृत्तालक, सुराष्ट्रज, आढकी, मृत्स्ना तथा सुरमृत्तिका ये सब हैं। सोरठी माटी—फिटकिरी के जितने गुण कह आये हैं वे सब सोरठी माटी के भी होते हैं ॥ १५४–१५५ ॥

अथ कृष्णमृत्तिका (काली मिट्टी) तस्य नामगुणानाह

मृन्मृदा मृत्तिका मृत्स्ना क्षेत्रजा कृष्णमृत्तिका ।
कृष्णमृत् क्षतदाहास्रप्रदरश्लेष्मपित्तनुत् ॥ १५६ ॥

काली मिट्टी के संस्कृत नाम—मृद् , मृदा, मृत्तिका, मृत्स्ना, क्षेत्रजा, कृष्णमृत्तिका और कृष्णमृत् ये सब हैं। काली मिट्टी—क्षत, दाह, रक्तप्रदर या रक्तविकार, प्रदररोग, कफ तथा पित्त को दूर करने वाली होती है ॥ १५६ ॥

अथ कर्दमः (कीचड़) तस्यगुणानाह

पङ्कस्तु जलकल्कश्च चुलुकः कर्दमो मलः। चिक्किलः पलितो द्रापः पललश्च निषद्वरः ॥
कर्दमो दाहपित्तास्रशोथघ्नः शीतलः सरः ॥ १५७ ॥

कीचड़ के संस्कृत नाम—पङ्क, जलकल्क, चुलुक, कर्दम, मल, चिक्किल, पलित, द्राप, पलल तथा निषद्वर ये सब हैं। कीचड़—शीतल तथा सारक होता है एवम्—दाह, पित्त, रक्तविकार और शोथ को नष्ट करने वाला होता है ॥ १५७ ॥

अथ कपर्द्दकम् (कौड़ी) । तस्य नामगुणानाह

कपर्दको वराटश्च कपर्दी च वराटिका। कपर्दिका हिमा नेत्रहिता स्फोटक्षयापहा ॥
कर्णस्रावाग्निमान्द्यघ्नो पित्तास्रकफनाशिनी ॥ १५८ ॥

कौड़ी के संस्कृत नाम—कपर्दक, वराट, कपर्दी, वराटिका तथा कपर्दिका ये सब हैं।

कौड़ी—शीतल, नेत्रों के लिये हितकर, विस्फोट, क्षय, कर्णस्राव, अग्नि की मन्दता, पित्त, रक्तविकार तथा कफ को नष्ट करने वाली होती है ॥ १५८ ॥

अथ शङ्खः । तस्य नामगुणानाह

शङ्खः समुद्रजः कम्बुः सुनादः पावनध्वनिः ।
शङ्खो नेत्र्यो हिमः शीतो लघुः पित्तकफास्रजित् ॥ १५९ ॥

शङ्ख के संस्कृत नाम—शंख, समुद्रज, कम्बु, सुनाद तथा पावनध्वनि ये सब हैं।

शङ्ख—नेत्रों के लिये हितकर, शीतल, लघु एवम्—पित्त, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ १५९ ॥

अथ बोलम् । तस्य नामानि गुणांश्चाह

बोलगन्धरसप्राणपिण्डगोपरसाः समाः । बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् ॥
मधुरं कटु तिक्तं च दाहस्वेदत्रिदोषजित् । ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ १६० ॥

बोल के संस्कृत नाम—बोल, गन्धरस, प्राण, पिण्ड तथा गोपरस ये सब हैं। बोल—मधुर, कटु तथा तिक्तसयुक्त, रुधिरविकार नाशक, शीतल, मेधाशक्ति के लिये हितकर, अग्निदीपक, एवम्—दाह, स्वेद (पसीना), त्रिदोष, ज्वर, अपस्मार (मिर्गी) तथा कुष्ठ को दूर करने वाला होता है ॥ १६० ॥

बोल, हीराबोल

हिं०—बोल, हीराबोल । बंब—करम, बंदरकरम । अं०—Myrrh (मिर्ह)। ले०—*Commiphora myrrha Holmes* (कॉम्मिफोरा मिर्ह)। Fam. Burseraceae (बर्सेरेसी)।

इसका वृक्ष उत्तर पूर्व अफ्रीका तथा अरब में पाया जाता है। यह करीब १० फीट ऊँचा होता है। इसकी अन्य प्रजातियाँ भी होती हैं जो २५-३० फीट तक ऊँची होती हैं।

यह उपर्युक्त वृक्ष का निर्यास है। इसका संग्रह सोमालीलैण्ड में होता है। वहाँ से यह अदन को भेजा जाता है जहाँ से बंबई के रास्ते या सीधे इसका यूरोप में निर्यात होता है।

अधिकतर यह अपने आप ही निकला हुआ पाया जाता है किन्तु कभी-कभी वृक्षों में चीरा लगाकर भी इसे प्राप्त करते हैं। यह पीताभ श्वेत गाढ़ा तरल पदार्थ होता है जो वृक्ष से निकलते ही गरमी से सूखकर रक्ताभ भूरा हो जाता है।

स्वरूप—इसके विभिन्न नाप के टुकड़े या गोल दाने १-४ इञ्च व्यास के होते हैं। यह बाहर से रक्ताभ भूरा या रक्ताभ पीला तथा चूर्णावृत दिखलाई पड़ता है। यह आसानी से तोड़ा जा सकता है तथा तोड़ने पर अंदर से यह गहरा भूरा तैलीय एवं कभी-कभी श्वेत चिह्नों से युक्त होता है। इसमें विशिष्ट गंध एवं स्वाद, सुगंधि, तिक्त एवं कटु होता है।

परीक्षा—(१) जल के साथ घोटने से इसका पीला इमल्शन बनता है। (२) ईथरीय सत्व को सुखाकर उसका संयोग शोरे के तेजाब के धूएँ या ब्रोमीन के धूएँ से करने पर गहरा बैंगनी रंग इसमें आता है। (३) इसमें मद्यसार में अघुलनशील भाग ७०% से अधिक न हो तथा राख ५% से अधिक न हो।

इसका एक भेद बीसाबोल होता है जो अन्य वृक्ष से निकलता है। यह अधिक गंधयुक्त होता है। उपर्युक्त परीक्षा से इसे अलग किया जा सकता है। संग्रह करते समय इसके साथ ही गोंद, गुग्गुल आदि का भी संग्रह होने के कारण बोल में इनकी भी मिलावट होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल, राल, गोंद आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह आर्तवजनन, श्लेष्मलकला के लिये उत्तेजक, प्रतिदूषक, कफनाशक एवं दीपन है।

इसका प्रयोग अनार्तव, गर्भाशय शैथिल्य, श्वेतप्रदर, बस्तिशोथ, कास, श्वास एवं कुपचन में करते हैं।

मुख पाक, गले की खराश एवं मसूड़े की सूजन में इसके द्रव से कुल्ला (गण्डूश) करने से लाभ होता है। इसका लेप व्रण पर किया जाता है। दंत मंजन में इसे डालते हैं। सुगंध के लिये धूप में इसका उपयोग होता है। मात्रा—½-२ रत्ती।

अथ कङ्कुष्ठः । तस्योत्पत्तिं भेदाँश्चाह

हिमवत्पादशिखरे कङ्कुष्ठमुपजायते । तत्रैकं रक्तकालं स्यात्तदन्यदण्डकं स्मृतम् ॥ १६१ ॥

कंकुष्ठ की उत्पत्ति—हिमालय के पास के पर्वतों के शिखर पर कंकुष्ठ की उत्पत्ति होती है।

भेद—इसके दो भेद हैं। पहला रक्तकाल, दूसरा अण्डक-ये दोनों संस्कृत नाम हैं ॥१६१॥

*हिमवत्पादशिखरे = हिमवतः प्रत्यन्तपर्वतानां शिखरे ॥ १६१ ॥

यहाँ पर मूल में 'हिमवत्पादशिखरे' इस पद का 'हिमालय के पास के पर्वतों के शिखर पर' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १६१ ॥

अथोत्तमाधमकङ्कुष्ठयोर्लक्षणमाह

पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कङ्कुष्ठमादिमम् । श्यामं पीतं लघु त्यक्तसत्त्वं नेष्टं तथाऽण्डकम् ॥

उत्तम कंकुष्ठ के लक्षण—इस में जो पहला भेद (रक्तकाल-संज्ञक) है, वह पीले रङ्गकी कान्तिवाला गुरु तथा स्निग्ध होता है और वही उत्तम होता है।

अधम कंकुष्ठ के लक्षण—जो अण्डक संज्ञक भेद होता है वह सांवला तथा पीला होता है एवम् लघु और निःसार होता है अतः यह निकृष्ट समझा जाता है ॥ १६२ ॥

अथ कङ्कुष्ठस्य नामगुणानाह

कङ्कुष्ठं काककुष्ठं च विरङ्गं कोलकाकुलम् ॥ १६३ ॥
कङ्कुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णं वर्णकारकम् । कृमिशोथोदराध्मानगुल्मानाहकफापहम् ॥ १६४ ॥

कंकुष्ठ के संस्कृत नाम—कङ्कुष्ठ, काककुष्ठ, विरङ्ग तथा कोलकाकुल ये सब हैं।

कंकुष्ठ—यह तिक्त तथा कटुरस युक्त, रेचक, उष्ण, वर्णकारक एवम्—कृमि, शोथ, उदररोग, आध्मान, गुल्म, आनाह (अफरा) तथा कफ को दूर करने वाला होता है ॥ १६३-१६४ ॥

कंकुष्ठ क्या है इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। भावप्रकाशकार इसके दो भेद मानते हैं तथा उत्पत्ति हिमालय में मानते हैं। रसरत्नसमुच्चय में भी इसके दो भेद 'नलिकाख्य' एवं 'रेणुक' दिये हैं। यह पीतवर्ण का तीव्र विरेचक पदार्थ है जिसकी यवमात्रा (⅛ रत्ती) से विरेचन होता है तथा यह सत्वरूप होने के कारण इसका सत्व नहीं निकाला जाता ऐसा भी उल्लेख है।

उपर्युक्त शास्त्रीय वर्णन के आधार पर अनेक विद्वानों ने 'गम्बोज' को कंकुष्ठ माना है जो उचित मालूम पड़ता है। इसका वर्णन वटादिवर्ग (पृष्ठ ५३३) में किया जा चुका है।

अन्य मतों में कुछ इसे तत्काल जन्मे हुवे हाथी के बच्चे की विष्ठा, कुछ घोड़े के बच्चे की नाल, कुछ मुर्दासंग (सीसे का यौगिक), स्वर्णक्षीरी, रेवंदचीनी, इत्यादि पदार्थ मानते हैं जिनमें से रेवंदचीनी को कंकुष्ठ माना जा सकता है। रेवंदचीनी की वह गॅम्बोज के जितनी तीव्र विरेचक नहीं होती। इसका संक्षेप में वर्णन आगे दिया जा रहा है। गॅम्बोज को बाजार में उसारे रेवंद (रेवंदचीनी का सत) कहते हैं किन्तु वह रेवंदचीनी का उसारा (सत) नहीं है। गॅम्बोज (उसारे रेवंद) यह एक वृक्ष का निर्यास है और रेवंदचीनी यह एक गुल्म की जड़ है। रेवंदचीनी की जड़ के सत्व की तरह गॅम्बोज में गुण होने के कारण संभवतः गॅम्बोज को भी उसारे रेवंद कहा जाता होगा।

रेवंदचीनी

सं०–पीतमूला, अम्लपर्णी। **हि०**–रेवंदचीनी। **नेपा०**–पदमचल। **गढ़**–अर्चु। **अं०, फा०**–रेवंद, रेवास। **अं०**–Rhubarb (रूबार्ब)। **ले०**–*Rheum emodi Wall.* (रिअम् एमोडी)। Fam. Polygonaceae (पॉलिगोनेसी)।

यह हिमालय, नेपाल, सिक्किम में ११ से १२ हजार फीट की ऊँचाई तक एवं सिमला, कांगड़ा जिला तथा चीन तिब्बत आदि देशों में होती है।

इसका पौधा दृढ़ होता है। काण्ड–पर्णवत्, मजबूत, ४–५ फीट लम्बा, हरी एवं भूरी धारीयों से युक्त होता है। मूलपत्र–बहुत बड़े, लम्बे वृन्त से युक्त, गोलाकार या चौड़ाई लिये अंडाकार, आधार हृदयाकार, ५–७ शिराओं से युक्त, नीचे से मृदुरोमश किन्तु ऊपरी सतह कुछ खुरदरी होती है। पुष्प–छोटे एवं गहरे बैंगनी एवं फल–बैंगनी, ½ इञ्च लम्बे, अंडाकार–आयताकार होते हैं। इसकी शाखा एवं पत्ती जो अम्ल होती हैं, सुखाकर, वेणी की तरह गूथकर अमलबेत के नाम से बेची जाती है।

इसकी अन्य जाति हि० वेब्बिआनम् (R. webbianum Royle) में पुष्प हलके पीताभ, छोटे एवं फल भी छोटे होते हैं। यह नेपाल से काश्मीर तक १०–१४ हजार फीट तक पाईजाती है।

इस प्रजाति की विभिन्न जातियों के मूल का रेवंदचीनी के नाम से व्यवहार होता है। ६–७ वर्ष पुराने पौधे की मूल का पुष्पोद्गम के पूर्व संग्रह किया जाता है।

इसके टुकड़े भूरे पीले रंग के लंबगोल, १ से ८ इञ्च लंबे, ½ से ३ इञ्च तक व्यास के, लंबाई में झुर्रीदार तथा धारीदार होते हैं। इसका स्वाद तिक्त एवं कषाय तथा इसमें विशेष गन्ध रहती है। इसे चबाने से इसमें के कैल्शियम् ऑक्जेलेट के कारण करकरापन मालूम होता है तथा इससे लार पीली हो जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें मुख्य रूप से ॲन्थ्रॅक्विनोन (Anthraquinone) से व्युत्पन्न द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह अल्प मात्रा (½–४ रत्ती) में तिक्त, दीपन एवं ग्राही है। अधिक मात्रा (१–२ माशा) से इसका प्रभाव बृहदांत्र पर होकर ६ से ८ घंटे में विरेचन होता है जो इसमें के ग्राही तत्व के कारण अपने आप बाद में रुक जाता है। मृदु विरेचक रूप में तथा अजीर्ण से उत्पन्न अतिसार में इसे देते हैं। जीर्ण विबन्ध में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इससे मूत्र का रंग गहरा हो जाता है। इसके साथ सोंठ, सौंफ आदि सुगंध द्रव्य देने से मरोड़ नहीं होती।

इसको जल में पीसकर लेप करने से सूजन कम होती है।

अथ रत्नम् । तस्य निरुक्तिमाह

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीवयत् । ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः॥१६५॥

रत्न शब्द की निरुक्ति—धन को चाहने वाले सभी लोग इसमें अत्यन्त रमण करते हैं अर्थात् अधिक आनन्दित हो अपना चित्त लगाते हैं—इससे शब्दशास्त्र के जानने वालों ने इसे 'रत्न' कहा है ॥ १६५ ॥

अथ रत्ननामान्याह

रत्नं क्लीबे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते । तत्तु पाषाणभेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते ॥

रत्न के संस्कृत नाम—रत्न (यह नपुंसकलिङ्ग होता है), मणि (यह पुँल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में होता है) ये दोनों हैं। यह (रत्न) पत्थर के भेद हीरा आदि का तथा मोती आदि का बोधक होता है ॥ १६६ ॥

*तथा चामरसिंहः—

रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्ताऽऽदिकेऽपि च ॥ १६६ ॥

यहाँ पर अमरसिंह ने भी अमरकोश में इसी बात को कहा है कि—"रत्न (नपुंसकलिङ्ग) तथा मणि (यह पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी है) ये दोनों शब्द पत्थर की जाति हीरा आदि और मोती आदि के वाचक हैं।" यह समझना चाहिये ॥ १६६ ॥

अथ रत्नानां संख्यामाह

रत्नं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च । इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैदूर्यमित्यपि ॥
मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥ १६७ ॥

रत्नों की संख्या—रत्न (हीरा), गारुत्मत (पन्ना), पुष्पराग (पुखराज), माणिक्य (मानिक), इन्द्रनील (नीलम), गोमेद, वैदूर्य (लहसुनिया), मौक्तिक (मोती), विद्रुम (मूंगा) ये नव रत्न कहे हुये हैं ॥ १६७ ॥

अथ विष्णुधर्मोत्तरेऽपि नवरत्ननिरूपणमाह

मुक्ताफलं हीरकं च वैदूर्यं पद्मरागकम् ॥ १६८ ॥
पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा । प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव ॥१६९॥

विष्णुधर्मोत्तर में भी नवरत्न का निरूपण इस प्रकार है कि—१ मोती, २ हीरा, ३ लहसुनिया, ४ मानिक, ५ पोखराज, ६ गोमेद, ७ नीलम, ८ पन्ना, ९ मूंगा ये नव महारत्न हैं ॥ १६८–१६९ ॥

तत्र हीरकः । तस्य नामानि सलक्षणान् भेदानाह

हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रो मणिवरश्च सः । स तु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः ।
पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मकश्च सः ॥ १७० ॥

हीरा के संस्कृत नाम—हीरक (पुंलिङ्गी), वज्र (पुंलिङ्गी तथा नपुंसकलिङ्गी), चन्द्र और मणिवर ये सब हैं । भेदों के लक्षण—जो हीरा सफेद रङ्ग का होता है वह—ब्राह्मण, लाल रङ्ग का—क्षत्रिय, पीले रङ्ग का—वैश्य, असित रंग का शूद्र वर्ण का होता है, इस भांति से हीरा की ४ जातियां होती हैं ॥ १७० ॥

अथ तद्भेदानां गुणानाह

रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः । क्षत्रियो व्याधिविध्वंसी जरामृत्युहरः स्मृतः ॥
वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तस्तथा देहस्यदार्ढ्यकृत् । शूद्रो नाशयति व्याधीन् वयःस्तम्भं करोति च ॥

हीरा के भेदों के गुण—ब्राह्मण वर्ण का हीरा—रसायन के लिये उपयोगी तथा सर्वसिद्धियों का देनेवाला होता है । क्षत्रिय वर्ण का हीरा—रोगों को नष्ट करने वाला एवम् जरा (बुढ़ापा) तथा मृत्यु को दूर करने वाला होता है । वैश्यवर्ण का हीरा धन देनेवाला तथा देह को दृढ़ करने वाला होता है । शूद्रवर्ण का हीरा—रोगों को नाश करने वाला तथा आयु को स्थिर रखने वाला अर्थात शरीर में वृद्धावस्थाजन्य क्षीणता को नहीं आने देने वाला होता है ॥ १७१–१७२ ॥

अथ पुंस्त्रीनपुंसकभेदात् त्रिविधस्य तस्य लक्षणानिगुणानुपयोगविषयाँश्चाह

पुंस्त्रीनपुंसकानीह लक्षणीयानि लक्षणैः । सुवृत्ताः फलसम्पूर्णास्तेजोयुक्ता बृहत्तराः ॥
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दु विवर्जिताः । रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियः स्मृताः ॥

हीरे के अन्य प्रकार से तीन भेद—हीरे के पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक ये तीन भेद होते हैं जो आगे कहे जाने वाले लक्षणों से पहचाने जाते हैं । लक्षण—पुरुष जाति के जो हीरे होते हैं वे भली भाँति गोलाकार, फल से पूर्ण, तेज से युक्त, अत्यन्त बड़े एवम् रेखा तथा बिन्दु से रहित होते हैं । स्त्री जाति के हीरे—पूर्वोक्त गुणों से युक्त होते हुये केवल रेखा बिन्दुओंसे युक्त तथा ६ कोण वाले होते हैं ॥ १७३–१७४ ॥

⊛ षडस्रा=षट्कोणा ॥ १७३–१७४ ॥

यहाँ पर मूल में "षडस्राः" पद से ६ कोण वाले यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १७३–१७४ ॥

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः । तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धनकारिणः ॥
स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः । नपुंसकास्त्ववीर्याः स्युरकामा सत्ववर्जिताः
स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीबंक्लीबे प्रयोजयेत् । सर्वेभ्यः सर्वदादेयाःपुरुषा वीर्यवर्धना ॥

नपुंसक जाति के हीरे—त्रिकोण युक्त तथा अधिक लम्बे होते हैं ।

गुण—इनमें पुरुष-जाति के हीरे-श्रेष्ठ तथा रस के बन्धन करने वाले होते हैं । स्त्री-जाति के हीरे-शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाले एवम् विशेष रूप से स्त्रियों के लिये सुखदायी होते हैं । नपुंसकजाति के हीरे—वीर्यहीन, काम ह्रासक तथा शक्ति से रहित होते हैं ।

उपयोग के विषय—स्त्री जाति के हीरे—स्त्रियों के लिये, नपुंसक जाति के हीरे—नपुंसकों के लिये देने चाहिये एवं वीर्यवर्धक पुरुष जाति के हीरे—सभी के लिये सदा देने योग्य होते हैं ॥ १७५–१७७ ॥

अथाशुद्धहीरकदोषानाह

अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा । पाण्डुतां पङ्गुलत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥

अशुद्ध हीरा के दोष—बिना शोधन किया हुआ हीरा—कुष्ठ, पसलियों में पीड़ा, पाण्डु तथा पङ्गु रोग (पङ्गुल) को उत्पन्न करने वाला होता है अत एव शोधन करके भस्म करना उचित है १७८ ॥

अथ मारितस्य वज्रस्य गुणानाह

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च । सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥

भली भाँति शुद्ध हीरे के भस्म के गुण—हीराभस्म—आयु, पुष्टि, बल, वीर्य, शरीर का सुन्दर वर्ण तथा सुख की वृद्धि करता है । अतः सेवन करने से वह सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १७९ ॥

अथ गारुत्मतम् (पन्ना इति लोके) । तस्य नामान्याह

गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः ॥ १८० ॥

पन्ना के संस्कृत नाम-गारुत्मत , मरकत, अश्मगर्भ और हरिन्मणि ये सब हैं ।

अथ माणिक्यम् (चुन्नी) । तस्य नामान्याह

माणिक्यं पद्मरागः स्याच्छोणरत्नञ्च लोहितम् ॥ १८१ ॥

मानिक के संस्कृत नाम—माणिक्य, पद्मराग, शोणरत्न और लोहित ये सब हैं ॥ १८१ ॥

अथ पुष्परागः (पुखराज) । तस्य नामान्याह

पुष्परागो मञ्जुमणिः स्याद्वाचस्पतिवल्लभः ॥ १८२ ॥

पोखराज के संस्कृत नाम—पुष्पराग, मन्जुमणि तथा वाचस्पतिवल्लभ ये सब हैं ॥ १८२ ॥

अथेन्द्रनीलं गोमेदश्च (नीलम और गोमेदमणि) । तयोर्नामान्याह

नीलं तथेन्द्रनीलञ्च गोमेदः पीतरत्नकम् ॥ १८३ ॥

नीलम के संस्कृत नाम—नील और इन्द्रनील ये सब हैं।
गोमेद के संस्कृत नाम—गोमेद तथा पीतरत्नक ये सब हैं ॥ १८३ ॥

अथ वैदूर्यम् (लहसुनिया) । तस्य नामान्याह

वैदूर्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतुग्रहवल्लभम् ॥ १८४ ॥

लहसुनिया के संस्कृत नाम—वैदूर्य, दूरज रत्न तथा केतुग्रहवल्लभ ये सब हैं ॥ १८४ ॥

अथ मौक्तिकम् । तस्य नामान्युद्भवस्थानानि गुणांश्चाह

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलञ्च तत् । शुक्तिः शङ्खो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः ॥
वेणुरेते समाख्यातास्तज्ज्ञैर्मौक्तिकयोनयः । मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम् ॥

मोती के संस्कृत नाम—मौक्तिक, शौक्तिक, मुक्ता तथा मुक्ताफल ये सब हैं । मोती के उत्पत्ति स्थान—सीप, शङ्ख, हाथी, सूअर, साँप, मछली, मेढक और बाँस ये आठ मोतियों के निकलने के स्थान मोतियों के विषय में अभिज्ञ लोगों ने बतलाये हैं ॥

मोती—शीतल, वीर्यवर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, बल तथा पुष्टि को देने वाला होता है ॥ १८५ ॥

अथ प्रवालः (मूँगा) । तस्य नामान्याह

पुंसि क्लीबे प्रवालः स्यात्पुमानेव तु विद्रुमः ॥ १८६ ॥

मूँगा के संस्कृत नाम—प्रवाल (यह पुँलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग में होता है) तथा विद्रुम (यह केवल पुँल्लिङ्ग में होता है) ये सब हैं ॥ १८६ ॥

अथ रत्नानां गुणानाह

रत्नानि भक्षितानि स्युर्मधुराणि सराणि च । चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च ॥
मङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥ १८७ ॥

रत्नों के गुण—पूर्वोक्त रत्नों के भस्म खाने पर मधुर रसयुक्त, सारक, नेत्रों के लिये हितकर, शीतल तथा विषनाशक होते हैं । और धारण करने पर-मङ्गलदायक, सुन्दरता को बढ़ाने वाले तथा ग्रह सम्बन्धी दोषों को दूर करने वाले होते हैं ॥ १८७ ॥

किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोषहरं भवतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह, रत्नमालायाम्—

माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्माहेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् ।
देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शने-
र्नीलं निर्मलमन्ययोर्निगदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ १८८ ॥

"कौन रत्न किस ग्रह की प्रसन्नता उत्पन्न करने से उसके दोष को दूर करने वाले होते हैं" इस प्रश्न का उत्तर "रत्नमाला" में इस प्रकार दिया हुआ है—

मानिक—सूर्य का, अच्छी जाति का निर्मल मोती-चन्द्रमा का, मूंगा-मङ्गल का, पन्ना-बुध का, पोखराज-बृहस्पति का, हीरा-शुक्र का, निर्मल नीलम-शनि का, गोमेद और लहसुनिया ये दोनों-क्रम से राहु तथा केतु के रत्न कहे हुये हैं । अतः इनके धारण करने से उन उन ग्रहों के दोष दूर होते हैं ॥ १८८ ॥

अथोपरत्नानि । तेषां निरूपणमाह

उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैव च । मुक्ताशुक्तिस्तथा शङ्ख इत्यादीनि बहून्यपि ॥१८९॥

उपरत्नों का निरूपण—काच, कर्पूरनिया, सीप तथा शंख इत्यादि बहुत से उपरत्न हैं ॥१८९ ॥

***उपरत्नानि = गौणरत्नानि । कर्पूराश्मा = कर्पूरा, कर्पूरनिया । मुक्ताशुक्तिः = 'सीप' इति लोके प्रसिद्धा ॥ १८९ ॥**

यहाँ पर मूल में—"उपरत्न" से गौणरत्न अर्थ समझना चाहिये । "कर्पूराश्मा" से कर्पूरा या कर्पूरनिया, "मुक्ताशुक्ति" से "सीप" अर्थ समझना चाहिये ॥ १८९ ॥

अथ तेषां गुणानाह

गुणा यथैव रत्नानामुपरत्नेषु ते तथा । किन्तु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽयमुदाहृतः ॥१९०॥

उपरत्नों के गुण—रत्नों में जो गुण होते हैं वे ही गुण उपरत्नों में भी होते हैं किन्तु विशेषता यह है कि रत्नों की अपेक्षा इनमें स्वल्प होते हैं ॥ १९० ॥

अथ विषम् । तस्य नाम भेदानाह

विषं तु गरलः क्ष्वेडस्तस्य भेदानुदाहरे । वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ॥
सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूटस्तथैव च । हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव ॥ १९१ ॥

विष के संस्कृत नाम—विष (नपुंसकलिङ्गी), गरल तथा क्ष्वेड ये सब हैं ।

भेद—१ वत्सनाभ, २ हारिद्र, ३ सक्तुक, ४ प्रदीपन, ५ सौराष्ट्रिक, ६ शृङ्गिक, ७ कालकूट, ८ हालाहल, ९ ब्रह्मपुत्र ये ९ भेद स्थावर विष के होते हैं ॥ १९१ ॥

विषवर्ग

वक्तव्य—यहाँ पर विषों के ९ भेद बतलाये गये हैं जिनमें से वत्सनाभ एवं शृङ्गिक व्यवहार में प्रयोग में लाये जाते हैं । अन्य विषों का व्यावहारिक ज्ञान लुप्तप्राय है । वत्सनाभ एवं शृङ्गिक के नाम से जिन द्रव्यों का व्यवहार में उपयोग किया जाता है वह एकोनाइट (Aconite) की विभिन्न जातियों (Species) के मूल हैं किन्तु इनका जो स्वरूप निम्न मूल श्लोकों में वर्णन किया गया है वह एकोनाइट से पूर्ण रूप से मेल नहीं खाता । चूंकि एकोनाइट की और भी अनेक विषैली जातियाँ पाई जाती हैं इसलिये संभव है कि उपर्युक्त विषों में से कुछ अन्य भेद भी इन्हीं में से हों । इस संबन्ध में व्यापक अनुसंधान की आवश्यकता है ।

तत्र वत्सनाभः । तस्य स्वरूपनिरूपणमाह

सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा । यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥

वत्सनाभ विष के स्वरूप का वर्णन-जिसके पत्ते संभालू के पत्तों के समान हों तथा आकार बछड़े की नाभि के समान हो और जिसके नजदीक दूसरे वृक्षों की वृद्धि न हो सकती हो उसे 'वत्सनाभ' समझना चाहिये ॥ १९२ ॥

वक्तव्य—व्यवहार में जिस द्रव्य का उपयोग किया जाता है उससे उपर्युक्त वर्णन मेल नहीं खाता ।

वत्सनाभ

हि०—विष, मीठा विष, वच्छनाग, वचनाग, तेलिया विष । **बं०**-कठ विष, वत्सनाब विष, विष । **म०**—वचनाग । **गु०**—बच्छनाग, वसनाग । **क०**—वत्सनाबी । **ते०**—नाभि, वसनाभि । **पं०**—मीठा विष । **ता०**—वत्सनाभि । **अ०**—विष । **फा०**—विषनाग, जहर । **अं०**—Aconite (एकोनाइट) । **ले०**—*Aconitum ferox Wall.* (एकोनाइटम फेरॉक्स) । Fam. Ranunculaceae (रेनन्क्यूलेसी) ।

यह हिमालय की चोटियों पर, नेपाल तथा आसाम में उत्पन्न होता है। इसका क्षुप–१–२ हाथ ऊँचा होता है। पत्ते–करतलाकार एवं अनेक भागों में विभक्त होते हैं। पुष्प–लंबे पुष्पदण्ड पर नीले पुष्प आते हैं। मूल–युग्म एवं कंदसदृश होता है जिसमें नये वर्ष का कन्द १–१$\frac{३}{४}$ इञ्च लम्बा $\frac{२}{४}$–$\frac{३}{४}$ इञ्च मोटा, अंडाकार आयताकर से लेकर दीर्घवृत्ताकार, कुछ सूत्राकार उपमूलों से युक्त एवं तोड़ने पर कुछ पिष्टमय पीताभ होता है। तथा पहले वर्ष का कन्द बहुत सिकुड़ा हुआ एवं झुर्रीदार होता है। इसमें गन्ध नहीं होती और स्वाद में पहले मीठा और फिर कुछ कड़वा जान पड़ता है। चबाने से थोड़ी देर बाद चिनचिनाहट और शून्यता मालूम होती है जो कुछ समय तक बनी रहती है।

वक्तव्य—भारत में एकोनाइट (Aconite) की २४ जातियां (Species) पाई जाती हैं। एकोनाइटम नेपेल्लस (Aconitum napellus Linn.) जो ब्रिटिश फार्माकोपिया में मान्य है अपने यहां नहीं होता। उसका प्रतिनिधि ए. चॅस्मेन्थम् है जिसका विस्तुत वर्णन आगे शृङ्गिक के अन्तर्गत किया गया है। यह ए. नेपेल्लस से अधिक वीर्यवाला होता है। यह भी बाजार में कम आता है। ए. फेराक्स के नाम से बाजार में इसके साथ ए. डिनोह्राइझम (A. deinorrhizum Stapf) एवं ए. बालफोराई (A. balfourii Stapf) के मूल अधिक मात्रा में आते हैं। इसमें ए. लेसिनिएटम (A. laciniatum Stapf) एवं ए. स्पाइकेटम (A. spicatum Stapf) के मूलों का भी मिश्रण रहता है। इन्हीं में से सफेद जाति के नाम से ए. डिनोह्राइझम तथा ए. बालफोराई के मूल बिकते हैं। वत्सनाभ तथा शृङ्गिक इन्हीं विभिन्न जातियों में से हैं तथा इनके गुणकर्मों में समानता होने के कारण एक का दूसरे के स्थान पर प्रयोग होता है। शृङ्ग के समान मूल वैसे तो कुछ-कुछ सभी जातियों का है किन्तु ए. डिनोह्राइझम का कुछ अधिक शृङ्ग समान मालूम होता है। मूलों को काला बनाने के लिये व्यापारी कई प्रक्रियाओं को करते हैं। एक में इन्हें कसीस के साथ गोमूत्र में भिगोकर उबालते हैं तथा बाद में सुखाकर ऊपर से सरसों का तेल लगा देते हैं। ऐसी धारणा है कि इस विधि से इसमें कीड़े नहीं लगते।

उपर्युक्त विषैली जातियों के अतिरिक्त एकोनाइट की कुछ ऐसी भी जातियां हैं जिनमें विषैलापन नहीं होता जैसे अतिविषा एवं प्रतिविषा। इनको मुख में रखने से चुनचुनाहट नहीं होती जैसी विषैली जातियों में होती है। इनका वर्णन पहले हरीतक्यादि वर्ग में (पृष्ठ १२७) किया गया है। इन विषैली जातियों के गुणधर्मों में समानता होने के कारण इसके गुण, प्रयोग आदि आगे शृङ्गिक के साथ ही दिये गये हैं।

अथ हारिद्रः । तस्य स्वरूपनिरूपणमाह

हरिद्रातुल्यमूलो यो हारिद्रः स उदाहृतः ॥ १९३ ॥

हारिद्र विष का स्वरूप—हल्दी के तुल्य जिसकी जड़ हो उसे "हारिद्र विष" कहते हैं ॥१९३॥

अथ सक्तुकः । तस्य स्वरूपमाह

यद्ग्रन्थिः सक्तुकेनैव पूर्णमध्यः स सक्तुकः ॥ १९४ ॥

सक्तुक का स्वरूप–जिसकी गाँठें भीतर से सत्तू के समान चूर्ण से युक्त हों वह "सक्तुक" विष कहलाता है ॥ १९४ ॥

अथ प्रदीपनः । तस्य स्वरूपमाह

वर्णतो लोहितो यः स्याद्दीप्तिमान् दहनप्रभः। महादाहकरः पूर्वैः कथितः स प्रदीपनः ॥ १९५ ॥

प्रदीपन विष का स्वरूप— जिसका वर्ण लाल हो तथा जो अग्नि के समान कान्ति वाला एवम् अत्यन्त दाहकारक हो उसे "प्रदीपन" विष पूर्व के विद्वानों ने कहा है ॥ १९५ ॥

अथ सौराष्ट्रिकः । तस्य स्वरूपमाह

सुराष्ट्रविषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक उच्यते ॥ १९६ ॥

सौराष्ट्रिक विष का स्वरूप—सुराष्ट्र (गुजरात) देश में जो उत्पन्न होने वाला विष है उसे "सौराष्ट्रिक" कहते हैं ॥ १९६ ॥

अथ शृङ्गिकः । तस्य स्वरूपमाह

यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम्। स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्वविशारदैः ॥

शृङ्गिक का स्वरूप—द्रव्यों के तत्त्व को जानने वाले पण्डितों ने उसे "शृङ्गिक" कहा है जिसे गौ के सींग में बांध देने से उसका दूध लाल वर्ण का हो जाता हो ॥ १९७ ॥

शृङ्गिक विष

वक्तव्य—इससे संबंधित वक्तव्य पहले विषवर्ग एवं वत्सनाभ के साथ लिखा गया है जिसे पाठक वहीं देखें। एकोनाइट की एक महत्त्व की जाति का वर्णन, गुण, प्रयोग आदि यहाँ दिया जा रहा है जो सभी विषैली एकोनाइट के लिये सामान्य है। वत्सनाभ से निम्न जाति अधिक वीर्यवान् होने के कारण ग्रन्थोक्त प्रमाण से इसको आधी मात्रा में योगों में डालना चाहिये।

सं०–शृङ्गिक (जो रोग को नष्ट करे या जो शृङ्ग के सदृश हो)। हिं–मोहरी, पिळं, सिंगिया विष। कश्मी०–वनबकनग, मोहरी। अं०–Indian Aconite (इण्डियन एकोनाइट)। ले०–*Aconitum chasmanthum Stapf ex Holmes* (एकोनाइटम चेस्मेन्थम)। Fam. Ranunculaceae (रेनन्क्यूलेसी)।

यह पश्चिम हिमालय के चित्राल एवं हजारा से कश्मीर तक, ७००० से १२००० फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है।

इसका क्षुप–द्विवर्षायु एवं २ से ४ फीट ऊंचा होता है। पत्ते–अनेक, नीचे के अधिक लंबे वृन्त युक्त फलक १$\frac{३}{४}$–२$\frac{३}{४}$ इञ्च लंबा एवं २–३$\frac{३}{४}$ इञ्च चौड़ा, करतलाकार त्रिखण्डित जिनके खण्ड अनेक रेखाकार भागों में विभक्त रहते हैं। पुष्प–नीले या नील मिश्रित श्वेताभ प्रायः १ फीट लंबे गुच्छ में आते हैं। फल–फलियां कंगूरेदार होती हैं।

मूल–युग्म एवं कन्दसदृश होता है। नये वर्ष का कन्द शंकाकार, शंकाकार–बेलनाकार, आधार की तरफ चौड़ा, क्वचित् २ इंच तक लंबा एवं $\frac{१}{२}$–$\frac{३}{४}$ इञ्च मोटा, गहरे भूरे या कृष्णाभ भूरे रंग का, चिकना किन्तु सूखनेपर झुर्रीदार एवं अनेक उपमूलों या टूटे हुये उनके चिन्हों से युक्त होता है। तोड़ने पर भग्न उपास्थिसदृश (Cartilaginous), कठोर, बाह्य भाग में भूरापन लिये हुवे एवं भीतर श्वेत होता है। प्रथमवर्ष का कंद सिकुड़ा हुआ, एवं गहरी झुर्रीयों से युक्त होता है। यह बाहर से कृष्ण एवं अन्दर संपूर्ण भूरा होता है। इनका स्वाद प्रारंभ में कुछ कड़वा तथा बाद में चुनचुनाहट बनी रहती है। इनका संग्रह सितंबर के अंत में किया जाता है।

शोधन—इन्हीं मूलों का शोधन के पश्चात् चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इनको टुकड़े टुकड़े कर, ३ दिन ताजे गोमूत्र में भिगोकर, चौथे दिन गाय के दूध में दोलायंत्र में ३ घंटे मंद आँच पर पकावे। फिर उष्णजल से धोकर छाया में सुखा लें। इस विधि से इनका विषैलापन कम हो जाता है। बाह्य प्रयोग के लिये अशोधित द्रव्य का उपयोग किया जा सकता है।

रासायनिक संगठन—इसमें इन्डेकोनाइटीन (Indaconitine, C_{34} H_{47} O_{10} N) नामक विषैला क्षाराभ ४·३% होता है। यह क्षाराभ की मात्रा ब्रिटिश फार्माकोपिया में मान्य द्रव्य ए. नेपेल्लस से १० गुना अधिक है किन्तु एकोनाइटीन से केवल ०·७ गुना कार्यकर है। इसके विलयन की अत्यल्प मात्रा को जिह्वाग्र पर लगाने से उसी की तरह चुनचुनाहट होती है। इसके अतिरिक्त इसमें एकोनाइटिक एसिड एवं स्टार्च पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, व्यवायि, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, हृदयोत्तेजक, पीडाशामक, शोथहर, कफवातहर एवं वत्य है। यह अत्यन्त विषैला होने के कारण इसका सावधानी के साथ प्रयोग करना चाहिये। आधुनिक मत के अनुसार इसके प्रयोग से वातनाडियों के परिसरीय अंतिम भागों की क्रिया कम हो जाती है। अल्प मात्रा में इसका हृदय पर कोई परिणाम नहीं होता है किन्तु अधिक मात्रा से नाडी की गति तथा शक्ति कम होती है जिससे रक्त का दबाव भी कम हो जाता है। हृदय के विकारों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

आयुर्वेद में इसका प्रयोग अन्य औषधियों के साथ ज्वर, अतिसार, अग्निमांद्य, ग्रहणी, कास, श्वास एवं वातरोगों में किया जाता है। शोथ के कारण जब ज्वर हो तथा शरीर के किसी अंग में पीडा हो तो इससे अच्छा लाभ होता है।

शरीर के किसी अंग में जब पीडा रहती है तब इसका बाह्य लेप भी करते हैं। इसका प्रचूषण चर्म से भी होने के कारण बाह्य लेप में भी सावधानी आवश्यक है। (विस्तृत प्रयोगों के लिये रसरत्नसमुच्चय अ० २९ देखें)।

विषलक्षण—अधिक मात्रा से विषैले लक्षण उत्पन्न होते हैं। अंगुलियों में शून्यता तथा बाद में चुनचुनाहट एक विशिष्ट लक्षण है। पेट में गरमी का अनुभव, हृल्लास, श्वास तथा नाडी की मन्द गति तथा चर्म शीतल एवं आर्द्र आदि लक्षण विषाक्तता के द्योतक हैं।

विष चिकित्सा—इसमें रोगी को लेटाकर रखना, उष्णता पहुंचाना, वमन कराना या आमाशय प्रक्षालन कराना एवं आवश्यक होने पर कृत्रिम श्वसन कराना आदि उपाय करने चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ जैसे स्ट्रिकनीन, एट्रोपीन, कोरामीन, डिजिटेलिस आदि का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिये। गाय के घृत में सोहागा मिलाकर पिलाने से या घृत एवं शहद के साथ अर्जुन की छाल का चूर्ण चटाने से भी विष प्रभाव दूर होता है (रसकामधेनु)।

मात्रा—$\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ रत्ती।

अथ कालकूटः । तस्योत्पत्तिं स्वरूपञ्चाह

देवासुररणे देवैर्हतस्य पृथुमालिनः। दैत्यस्य रुधिराज्जातस्तरुरश्वत्थसन्निभः॥
निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः परिकीर्त्तितः। सोऽहिच्छत्रे शृङ्गवेरे कोङ्कणे मलये भवेत्॥

कालकूट विष का उत्पत्तिस्थान—देवता तथा असुरों के युद्ध में जब देवताओं ने पृथुमाली नामक दैत्य को मारा तब उसके रुधिर से जो पीपल के समान वृक्ष उत्पन्न हुआ, उसी के गोंद को मुनियों ने "कालकूट" कहा है। वह अहिक्षेत्र, शृङ्गवेर, कोंकण तथा मलय देश में उत्पन्न होता है॥१९८॥

अथ हालाहलः । तस्य स्वरूपमुत्पत्तिं चाह

गोस्तनाभफलो गुच्छस्तालपत्रच्छदस्तथा। तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः॥
असौ हालाहलो ज्ञेयः किष्किन्धायां हिमालये। दक्षिणाब्धितटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते॥

हालाहल विष का स्वरूप—जिसके फलों के गुच्छे—दाख के फलों के गुच्छों के समान हों तथा पत्ते—ताल के पत्तों के समान हों, एवम्—जिसके तेज से समीप के पेड़ जल जाते हों, उसे "हालाहल" विष समझना चाहिये। यह—किष्किन्धा, हिमालय पर्वत, दक्षिण समुद्रतट के देश तथा कोंकण में उत्पन्न होता है॥ १९९॥

अथ ब्रह्मपुत्रः । तस्य स्वरूपमाह

वर्णतः कपिलो यः स्यात्तथा भवति सारतः। ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले॥

ब्रह्मपुत्र विष का स्वरूप—जिसका वर्ण कपिल रङ्ग का हो तथा जिसका सार भाग भी कपिल वर्ण का हो उसे "ब्रह्मपुत्र विष" जानना चाहिये और वह मलय पर्वत पर उत्पन्न होता है॥२००॥

अथ विषस्य लक्षणोपयोगसहितान् भेदानाह

ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो लोहितप्रभः। वैश्यः पीतोऽसितः शूद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः॥
रसायने विषं विप्रं क्षत्रियं देहपुष्टये। वैश्यं कुष्ठविनाशाय शूद्रं दद्याद्वधाय हि॥ २०२॥

विष के भेद—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये ४ भेद विष के हैं। उनके लक्षण—इनमें ब्राह्मण जाति का विष—पाण्डुर (श्वेत) वर्ण का, क्षत्रिय जाति का विष—रक्तवर्ण का, वैश्य जाति का विष—पीले वर्ण का तथा शूद्र जाति का विष—काले वर्ण का होता है।

उपयोग—इनमें ब्राह्मण जाति का विष—रसायन के कार्य में, क्षत्रिय जाति का विष—शरीर को पुष्ट करके के लिये, वैश्य जाति का विष—कुष्ठ दूर करके के लिये तथा शूद्र जाति का विष—वध करने के कार्य में उपयोगी होता है॥ २०१-२०२॥

अथ विषस्य दुर्गुणानाह

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च। आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम्॥२०३॥

विष के दुर्गुण—विष—प्राणनाशक, व्यवायी, विकाशी, आग्नेय, वात तथा कफ नाशक, योगवाही तथा मदावह होता है॥ २०३॥

***व्यवायि = सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकगमनशीलम्। विकाशि = ओजःशोषपूर्वकं सन्धिबन्धशिथिलीकरणशीलम्। आग्नेयम् = अधिकाग्न्यंशम्। योगवाहि = सङ्गिगुणग्राहकम्। मदावहं = तमोगुणाधिक्येन बुद्धिविध्वंसकम्॥ २०३॥**

यहाँ पर मूल में "व्यवायि" का "प्रथम सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर तत्पश्चात् पचने वाला" यह अर्थ समझना चाहिये और "विकाशि" पद का "शरीर में स्थित ओज को सुखाता हुआ सारे सन्धिबन्धनों को शिथिल करने वाला"; "आग्नेयम्" पद का "अधिक अग्नि के अंश से युक्त"; "योगवाहि" पद का "अपने साथी के गुणों को उत्तेजित करने वाला" तथा "मदावहम्" पद का "तमो गुण की अधिकता से बुद्धि का विध्वंस करने वाला" यह अर्थ समझना चाहिये॥ २०३॥

अथ शोधितविषस्य गुणानाह

तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम् । योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ २०४ ॥

शुद्ध किया हुआ विष—यदि पूर्वोक्त विषों को युक्ति युक्त करके अर्थात् शास्त्रानुकूल शुद्ध करके खाया जाय तो वे ही प्राण शक्ति को बढ़ाने वाले, रसायन (जरा-अपमृत्यु को दूर करने वाले), योगवाही, त्रिदोषनाशक, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक) एवं वीर्यवर्धक हो जाते हैं ॥ २०४ ॥

अथ विषशोधनस्यावश्यकतामाह

ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे ते स्युर्हीना विशोधनात् । तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥

विषों के शोधने की आवश्यकता—जो दुर्गुण अशुद्ध (बिना शोधे हुए) विष में कहे हुये हैं, वे सब शोधन करने से अत्यन्त कम हो जाते हैं। अतः औषधियों में विष का शोधन करके ही प्रयोग करना उचित है ॥ २०५ ॥

अथोपविषाः । तेषां निरूपणमाह

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः । गुञ्जाऽहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥ २०६ ॥

उपविषों का निरूपण—(१) मदार का दूध, (२) थूहर का दूध, (३) कलिहारी, (४) कनेर, (५) घुंमची, (६) अफीम एवं (७) धतूरा ये सात उपविष की जातियाँ हैं ॥ २०० ॥

***उपविषाः = गौणविषाः । एषां गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः ॥ २०६ ॥**

यहाँ पर मूल में "उपविष" का "गौणविष" यह अर्थ समझना चाहिये और इन सब के गुण जहाँ २ पर पहले उल्लिखित हों वहाँ २ पर कृपया देख लें, जैसे—

मदार के	दूधका गुण—	गुडूच्यादिवर्ग—	पृ० ३०३
थूहर के	„	„	„ ३०७
कलिहारीका	गुण	„	„ ३१२
कनेर का	„	„	„ ३१४
गुञ्जा का	„	„	„ ३५४
अफीम का	„	हरीतक्यादिवर्ग—	„ १४७
धतूरे का	„	गुडूच्यादिवर्ग—	„ ३१७

इन सब स्थानों पर देख लें ॥ २०६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे अष्टम धात्वादिवर्गः समाप्तः ॥ ८ ॥